आलोचनात्मक अध्ययन—
(प्रश्नोत्तर रूप में)

सूरदास

लेखक—
श्री वासुदेव शर्मा, शास्त्री

विनोद पुस्तक मन्दिर
— आगरा —

प्रथमवार] १९५२ [मूल्य २॥)

प्रकाशक-
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटलरोड, आगरा।

मुद्रित
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस,
राजामण्डी, आगरा।

दो शब्द !!

आजकल प्रायः सभी विश्व-विद्यालयों की एम० ए० (हिन्दी) में, प्रयाग हिन्दी विश्वविद्यालय की साहित्यरत्न में एवं साहित्यालङ्कार (विहार) की परीक्षाओं में सूरदास और अन्य भी कई कवि विशेष अध्ययन के लिये निर्धारित हैं। छात्रगण प्रायः सूरदास को ही निर्वाचित करते हैं।

यद्यपि सूर पर बहुत सा साहित्य उपलब्ध है, तथापि परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण से अत्यल्प है। हमने प्रस्तुत "एक अध्ययन" प्रश्नोत्तर रूप में परीक्षोपयोगी दृष्टि से ही लिखा है।

सूर के सम्बन्ध में आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक दो प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। व्याख्या का ढंग या उसके पद हमने नहीं दिये। केवल आलोचना से सम्बद्ध सभी प्रश्न, जैसे—जीवनी, रचनायें, सिद्धान्त, भक्ति-भावना, चरित्र-चित्रण, लीला रहस्य व काव्य समीक्षा आदि दे दिये हैं। प्रायः यही प्रश्न परीक्षाओं में पूछे भी जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में हमने श्री पं० मुन्शीराम शर्मा "सोम", डा० ब्रजेश्वर वर्मा, श्री प्रभुदयाल मीतल, श्री रामरत्न भटनागर एवं आचार्य शुक्ल द्वारा लिखित सूर सम्बन्धी पुस्तकों से पूर्ण सहायता ली है, अतः उन सभी महानुभावों के प्रति हम अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही हम विनोद पुस्तक मन्दिर के संचालकों का भी विशेष आभार स्वीकार करते हैं जिनकी प्रेरणा से हम इस कार्य को पूर्ण कर सके।

हमें आशा है कि "सूरदास" के विद्यार्थियों को इससे पूर्ण लाभ प्राप्त होगा।

दिल्ली,
दीपावली २००६

—वासुदेव शर्मा

विषय-सूची

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न १—महाकवि सूरदास के जीवन के सम्बन्ध में जो सामग्री प्राप्त है, उस पर पूर्ण प्रकाश डालिये।

उत्तर—भारतीय ऋषि परमार्थ प्रिय थे। वे प्रत्यक्ष से नहीं अपितु परोक्ष से प्रेम करते थे और इसीलिये कुछ रचना करके भी अपना परिचय देने की परिपाटी उनमें न थी एवं ना ही उन्होंने समझी। क्योंकि वे नम्र थे तत्त्वदर्शी थे। वे अवतारों या चरित्रों की गाथा गाते-गाते उसी में इतना निमग्न हो जाते कि उन्हें अपनी विज्ञप्ति की बात ही न सूझती थी। महाकवि सूरदास के विषय में भी यही कथन ठीक है।

किसी भी कवि का जीवन वृत्त जानने के दो साधन हैं। (१) अन्तः साक्ष्य अर्थात् कवि ने अपनी रचनाओं में अपने सम्बन्ध में परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में जो कुछ कहा है; (२) वाह्य साक्ष्य—अर्थात् कवि के सम-सामयिक तथा परवर्ती विद्वानों ने उस सम्बन्ध में जो कुछ कहा है। इन दोनों साधनों में अन्तः साक्ष्य का अधिक मूल्य है। वाह्य साक्ष्य में सम-सामयिक विद्वानों का कथन अधिक प्रमाणिक है।

अतः यदि हम सूरदास की जीवनी के लिये कुछ अन्वेषण करते हैं तो हमें भी निम्न आधारों की शरण लेनी पड़ती है।

१—आत्म निवेदन सम्बन्धी पद।	अन्तः साक्ष्य
२—सूरदास के कूट पद।	
३—किंवदन्तियाँ।	वाह्य साक्ष्य
४—इतिहासकारों तथा अन्य समकालीन लेखकों की रचनाओं के उल्लेख।	

अन्तः साक्ष्य—अब हम इन आधारों को ध्यान में रख सूर के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में विचार प्रकट करेंगे। अन्त: साक्षियों में सूर सारावली का एक पद, साहित्य लहरी के दो पद तथा सूर सागर के कई पद सूर के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाले हैं। इन पदों से सूर के जीवन के सम्बन्ध में अनेक बातें ज्ञात हो जाती हैं। सूर-सारावली की निम्न लिखित पंक्तियों पर विचार कीजिये—

"गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव विधान तप करयो बहुत दिन तउ पार नहिं लीन॥

इन पंक्तियों में से प्रथम पंक्ति को लेकर प्राय: सभी आधुनिक विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि सूर-सारावली बनाने के समय सूरदासजी की आयु ६७ वर्ष की थी। और महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने से पूर्व वे शैव थे।

अन्त साक्षियों में साहित्य-लहरी के दो पद अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। एक पद साहित्य-लहरी के निर्माण के समय पर निश्चित रूप से प्रकाश डालता है; और दूसरा पद सूर के वंश तथा उनके जीवन से सम्बद्ध अनेक बातों को प्रकट करता है। प्रथम पद इस प्रकार है:—

मुनि-पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि, सुवल सम्वत् पेख॥
नन्द नन्दन मास, छै ते हीन तृतियावार।
नन्दनन्दन जनमते हैं बान सुख आगार॥
तृतीय ऋच्छ, सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन।
नन्द - नन्दन - दास - हित साहित्यलहरी कीन।

सूरदासजी इस पद में साहित्य लहरी का निर्माण काल बता रहे हैं। नीचे की पंक्ति से यह भी प्रकट हो रहा है कि साहित्यलहरी भगवान् कृष्ण के भक्तों के लिये लिखी गई है। साहित्यलहरी कब लिखी गई, इस बात का उल्लेख ऊपर के पद की पंक्तियों में इस प्रकार है, मुनि = ७, रसन अर्थात् रसना = १ या कार्यों की दृष्टि से = २, रस = ६, दसन गौरीनन्द = १, "अङ्कानां वामतो गति:" के अनुसार उलट

कर पढ़ने से सम्वत् निकला १६१७ या १६२७। नन्द-नन्दन-मास से अभिप्राय है, वैसाख का महीना; क्षय से हीन तृतीया अर्थात् अक्षय तृतीया। तृतीय ऋक्ष अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र। उस दिन सुकर्म योग था; नन्द-नन्दन (कृष्ण) जन्म बुधवार से बाण अर्थात् पांचवाँ दिन रविवार हुआ। सुबल सम्वत् का नाम था। इस पद में वर्णित सम्वत् के विषय में भी भेद हैं। यह भेद रसन "शब्द को लेकर हुआ, क्योंकि रसन" का कुछ कवियों ने "एक" अर्थ लिया है और कुछ ने दो। श्री मुंशीराम शर्मा "सोम" के मतानुसार उसका अर्थ दो ही समीचीन है। अतः सम्वत् १६२७ ही ठीक है।

साहित्य-लहरी के इस पद के अनुसार सूर १६२७ सम्वत् तक अवश्य जीवित थे। इसी सम्वत् के आस पास ही उनकी अकबर से भी भेंट हुई होगी। वे सम्वत् १६४२ के पूर्व निश्चित ही स्वर्धाम सिधार चुके थे, जैसा कि आगे उद्धृत "चौरासीवार्ता" के साक्ष्य से प्रमाणित होता है।

साहित्य-लहरी का दूसरा पद सूरदासजी के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। पद वह बहुत लम्बा है, किन्तु उसमें वर्णित भाव संक्षेप में इस प्रकार है—

सूर पृथ्वीराज के कवि चन्दवरदाई के वंशज ब्रह्मभट थे। चन्द-कवि के कुल में हरीचन्द हुए, जिनके सात पुत्रों में से सबसे छोटे सूरजदास या सूरदास थे। शेष ६ भाई जब यवनों से युद्ध करते हुए मारे गये तब अन्धे सूरदास बहुत दिनों तक इधर उधर भटकते रहे। एक दिन वे कुएँ में गिर पड़े और ६ दिन तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन भगवान् कृष्ण उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें दृष्टि देकर अपना दर्शन दिया। भगवान् ने कहा दक्षिण के एक प्रबल ब्राह्मण कुल द्वारा शत्रुओं का नाश होगा और तू सब विद्याओं में निपुण होगा। इस पर सूरदास ने वर मांगा कि जिन आँखों से मैंने आपका दर्शन किया उनसे और अब कुछ न देखूँ तथा सदा आपका भजन करूँ। कुएँ से भगवान् ने जब इन्हें बाहर निकाला तब वे

ज्यों के त्यों अन्धे हो गये और ब्रज में आकर भजन करने लगे। आचार्य वल्लभ के पुत्र गो० विट्ठलनाथजी ने सूरदास को अष्टछाप में प्रमुख स्थान दिया। इस पद से सूरदासजी की जीवन की प्रायः सभी घटनाओं का पता चल जाता है।

इनके अतिरिक्त "सूरसागर" में भी कुछ ऐसी अन्तः साक्षियाँ हैं जिनसे सूर के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सूर के गार्हस्थ्य जीवन के सम्बन्ध में निम्न पद विचारणीय हैं :—

(१) कितक दिन हरि सुमिरन बिनु खोये।
परनिन्दा रसना के रस में अपने पर-तर बोये॥

× × × ×

(२) अब के माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भव अम्बुनिधि में कृपा सिन्धु मुरारी॥
नीर अति गम्भीर माया, लोभ लहरि तरंग।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग॥

(३) अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना कंठ विषय की माल॥

(४) मेरी तो पति गति तुम अन्तहि दुःख पाऊँ।
हौं कन्हाइ तिहारौ अब कौन कौ कहाऊँ॥

❀ ❀ ❀ ❀

(५) सागर की लहर छाँड़ि खार कत अन्हाऊँ।
सूर कूर आँधरौ हौं द्वार परयौ गाऊँ॥

इन पद्यों में उन्होंने अपने जीवन में किए ठाठ व पापों का वर्णन किया है। साथ ही इससे उनकी अन्धता के विषय में भी पता चलता है। इन अन्तः साक्षियों के आधार पर सूर के लौकिक जीवन की कतिपय बातें ज्ञात हो जाती हैं।

बाह्य साक्षियाँ :—

नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में सूरदास के सम्बन्ध में केवल एक ही छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार :—

उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन अस्थिति अति भारी।
वचन, प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्भुत, तुक धारी॥
प्रति विम्बित दिवि दृष्टि, हृदय हरि लीला भासी।
जन्म, कर्म, गुन, रूप सबै रसना जु प्रकासी॥
विमल बुद्धि गुनि और की, जो वह गुन स्रवननि धरै।
श्री सूर कवित सुनि कौन कवि, जो नहि सिर चालन करै॥

इस छप्पय में सूर के अन्धे होने भर का संकेत है, जो परम्परा से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त किसी भी बात का पता नहीं चलता।

चौरासी वैष्णवों की वार्ता में—जो कि गो० विट्ठल नाथ जी के पुत्र गो० गोकुलनाथ ने लिखा है—उल्लेख मिलता है कि सूरदास गऊघाट के ऊपर रहते थे। वह घाट आगरा व मथुरा के बीच है। आचार्य वल्लभ से भेंट करने के पूर्व सूरदास सन्यासी हो चुके थे और इनके अनेक शिष्य इनकी सेवा में रहते थे। ये वैष्णव थे और गाना बहुत अच्छा गाते थे। एक बार महाप्रभु इनसे मिले उन्होंने सूर को कुछ भगवद् यश वर्णन करने के लिए कहा इस पर सूर ने यह विनय का पद सुनाया :—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जेहि तनु दियौ ताहि विसारयौ ऐसौ नौन हरामी॥

यह सुनकर महाप्रभु ने कहा—सूर होकर ऐसा क्यों घिघियाता है। कुछ भगवत् लीला वर्णन कर। पश्चात् ये आचार्य जी के शिष्य बन गये वे इन्हें साथ लेकर व्रज को चले गये।

व्रज में इनको अष्टछाप में प्रमुख स्थान मिला। इन्होंने अपनी मृत्यु से पूर्व यह पद कहा :—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि-चलि जात निकट श्रवनन के उलट पलट ताटंक फंदाते॥
सूरदास अंजन गुण अटके नातर अब उड़ जाते॥

भारतेन्दु जी का कहना है कि "यद्यपि सूरदास को हम पहले सारस्वत समझते थे परन्तु अब साहित्य लहरी के ११८ वें पद को देखकर हमारा विचार बदल गया।" फिर लिखते हैं "हमारी भाषा कविता के राजा सूरदास इतने बड़े वंश के (अर्थात् चन्द्रबरदाई के वंश के) हैं, यह जानकर हमें बड़ा आनन्द हुआ" उन्होंने सूर को चन्द्रबरदाई का वंशज माना है।

एक जन श्रुति के अनुसार सूर का जन्म स्थान दिल्ली के निकट सिही ग्राम है, किन्तु चौरासी वार्ता की टीका में उनका जन्म स्थान रुनकता बताया है, जो कि मथुरा व आगरा के बीच है। यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता कि उनका जन्म कहाँ हुआ। किन्तु उनकी भाषा को देखने से यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि उनका जन्म ब्रज-प्रदेश में हुआ है। एक अन्य जन श्रुति का कथन है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ उन्हें चन्द्रवंशी भाट मानते हैं, पर जिन पदों में उन्हें भाट माना गया है, अब वे प्रक्षिप्त सिद्ध हो चुके हैं। "भक्त विनोद" में भी उन्हें ब्राह्मण कहा गया है। अतः इस दशा में उन्हें ब्राह्मण मानना ही अधिक उचित है।

सारांश यह है कि सूर का जन्म लगभग १५४० में ब्रज-प्रदेश में हुआ। वे जन्मान्ध नहीं थे तथा गऊ घाट पर रहते थे। १५७६ के लगभग महाप्रभु ने पूर्णमल के मन्दिर में श्रीनाथ जी की स्थापना की। उसके बाद उनकी सूर से भेंट हुई और उन्होंने सूरदास जी को पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर लिया। तथा उन्हें भगवत् लीला गान का आदेश दिया। सूरदास जी ने सहस्रावधि पद श्रीकृष्ण के लीला गान में गाये। उन्होंने ६७ वर्ष की अवस्था में अपनी रचनायें प्रायः समाप्त करलीं और शायद इसी समय उनकी प्रसिद्धि के कारण अकबर ने भी उनसे भेंट की। उन्हें पुष्टि मार्ग का जहाज कहा जाता है। पारसोली ग्राम में गो० विट्ठलनाथ जी के सामने सम्वत् १६४२ के लगभग उनकी मृत्यु हुई।

प्रश्न २—सूर की जन्मान्धता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर–सूर जन्मत: ही अंधे थे, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कतिपय विद्वानों की सम्मति है कि सूर जन्म से ही अन्धे थे, किन्तु अन्य विद्वान कहते है कि वे अपने जीवन के वार्धक्य में नेत्र विहीन हुए। सूर के अन्धे होने के सम्बन्ध में सूरसागर में कई स्थान पर उल्लेख हुआ है।

(१) रास रस रीति नहिं वरनि आवै।
यहै मांगों बार बार, प्रभु, सूरके नयन द्वौ रहें, नरदेह पाउँ॥
(२) सूर कहा कहै द्विविधि आंधरो, बिना मोल को चेरो।
(३) सूर कूर आँधरौ हौं द्वार परयौ गाऊँ॥

उक्त पंक्तियों में सूर अपने को अन्धा कहते हैं और प्रभु की शरण चाहते हैं। वे भगवान से प्रार्थना करते हैं कि आगामी जीवन में मुझे मानव शरीर मिले, युगल दर्शन के अभिलाषी नेत्र मिलें, जिससे वे भगवान् की लीला देख सकें। इससे यह सिद्ध होता है कि सूरदास इस जीवन में नेत्र विहीन थे।

भक्तमाल, भक्तविनोद, चौरासीवार्ता से भी इन साक्षियों का समर्थन होता है :—

भक्तमाल–प्रतिविम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीलाधारी।

भक्त-विनोद–जन्म अन्ध दृग-ज्योति-विहीना।

चौरासी वार्ता–इसमें सूर के अन्धे होने का उल्लेख दो स्थानों पर है। एक तो वहाँ का है, जब आचार्य वल्लभ की सूर जी से भेंट हुई और आचार्य जी ने कहा :—"सूर, कछु भगवत् जस वर्णन करौ"। सूर ने विनय के पद सुनाये; जिन्हें सुन आचार्य जी ने कहा :—सूर ह्वै कें ऐसौ काहे को घिघियात है। कछु भगवत लीला वर्णन करो।" इस से यह प्रतीत होता है कि सूर महाप्रभु के मिलने से पूर्व ही अन्धे थे।

वार्ता में सूरदास के अन्धे होने का दूसरा उल्लेख अकबर से भेंट के समय का है। अकबर ने सूरदासजी से मिलने पर कहा कुछ सुनाइये, उस समय सूरने जो गाया, उनमें एक पंक्ति यह है :—

"सूर ऐसे दरस को ऐ मरत लोचन प्यास।"

यह सुन कर अकबर ने पूछा—तुम्हारे तो लोचन दीखते ही नहीं, सो प्यासे कैसे मरते हैं, और बिना देखे तुम उपमा कैसे देते हो"। वास्तव में अकबर का यह प्रश्न ठीक ही था और आज के विद्वानों के लिये भी यह प्रश्न वैसे ही बना है कि अगर वे अन्धे के तो उन्होंने प्रकृति या लीलाओं का सजीव वर्णन कैसे किया? जहां तक अन्तः सत्तियों का सम्बन्ध है वे सूर के अन्धे होने का समर्थन करती हैं। वे आचार्य महा प्रभु के मिलने के पूर्व तो अवश्य ही अन्धे थे। यही नहीं, युद्ध में अपने भाइयों के वीर गति पाने के समय भी वे अन्धे थे।

यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सूरदास जन्म से अन्धे नहीं थे तो क्या सूरसागर लिखने के पश्चात् वे अंधे हुए? इसके बीच में या इसके पूर्व? चौरासी वैष्णवों की वार्ता से इसका उत्तर स्पष्ट मिल जाता है। यह तो निश्चत ही है कि आचार्य वल्लभ से मिलने से पूर्व से ही सूर अन्धे थे। एक जगह उनके चौपड़ के खेल के दर्शन का वर्णन मिलता है। कुछ लोग कहते हैं कि अगर सूर अन्धे थे तो वे चौपड़ का खेल कैसे देख सके? पर प्रश्न यह है कि क्या अन्धा शब्द नहीं सुनता? क्या शब्द सुनकर उसे पदार्थ ज्ञान नहीं होता? आज विज्ञान के युग में यह सब कुछ सम्भव है। कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि तब विज्ञान का कुछ युग नहीं था ठीक है, पर सूरदासजी ने चौपड़ के गोटों का शब्द तो सुना होगा या अपने शिष्यों से जानकर चौपड़ खेलने का अनुमान कर लिया होगा। यह बात तो साधारण जन के विषय में भी हो सकती है, पर सूरदासजी की तो बात ही दूसरी है। वे भगवान् के परम भक्त थे। अघटित घटना को देने वाले भगवान् के भक्त के सामने विश्व के रहस्य भी छुपे नहीं रह सकते। क्योंकि वह तो—

मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लंघयते गिरिम्।

साधारण व्यक्ति जिस वस्तु को नेत्र रहते भी नहीं देख सकते

क्रान्त-दर्शी कवि एवं महात्मा उसको अनायास ही (दिव्य-नेत्रों से) देख लेते हैं।

एक ग्रन्थकार ने स्त्री द्वारा सुई से फोड़ी गई बिल्वमंगल सूरदास की आँखों वाली घटना को भी सूरदासजी के सम्बन्ध में कही है। वे लिखते हैं—"यह बात सत्य प्रतीत होती है। सम्भव है, स्त्री का विषय था, इस कारण चौरासी वार्ता में न लिखा गया हो"। पर यह बात जँचती नहीं, क्योंकि यदि यह सूरदास जी के सम्बन्ध में होती तो चौरासी वार्ता में इसे अवश्य ही स्थान मिलता।

यह तो सभी अन्तः साक्षियों की बात हुई। वाह्य साक्ष्य में सूरदास के समकालीन श्रीनाथ भट्ट तथा प्राणनाथ कवि इन्हें स्पष्ट जन्मान्ध कहते हैं :—

"जन्मान्धो सूरदासोऽभूत्"

वैसे भी हिन्दी भाषी जनता जन्मान्ध को ही सूरदास कहती है। इन सब अन्तः साक्षियों और वाह्य साक्षियों के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि सूर प्रौढ़ावस्था में अन्धे नहीं हुए बल्कि जन्म से ही अन्धे थे। जहाँ तक उनकी उपमाओं, प्रकृति आदि के वर्णन का विषय है, उस विषय में हम पहले ही कह चुके हैं, कि सूरदास जैसे क्रान्त-दर्शी कवि व भक्त के लिए यह सब असम्भव नहीं। उन्हें तो ज्ञान की ज्योति प्राप्त थी—भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से—और जिसकी अन्दर की आँखें खुलीं हों उसे वाह्य आँखों के होने न होने का कोई भी अन्तर नहीं पड़ता।

प्रश्न ३—सूरदास जी की रचनाओं पर प्रमाणिकता तथा विषय की दृष्टि से विचार कीजिये, या,

सूरदास जी की रचनाओं की प्रामाणिकता पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर—नागरी प्राचारिणी सभा काशी की खोज की रिपोर्ट के अनुसार सूरदास के १६ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। जिनके नाम इस प्रकार से हैं। १—सूरसारावली, २—साहित्य लहरी, ३-सूरसागर, ४-गोबर्धन

लीला बड़ी, ५—दशम स्कन्ध टीका, ६—नागलीला, ७—पद संग्रह, ८—प्राण प्यारी, ९—व्याहलो, १०—भागवत भाषा, ११-सूरपचीसी, १२—सूरदास के स्फुट पद, १३—सूरसागर सार, १४—एकादशी-महात्म्य, १५—रामजन्म, १६—नलदमयन्ती।

ये सभी ग्रंथ सूरदास के नहीं हो सकते, क्यों कि इनमें से कुछ में सूरदास की प्रियशैली और विषय की भिन्नता है। इनमें से कई तो सूरसागर के ही कुछ पदों के संग्रह मात्र हैं। भक्तों ने अपनी सुविधानुसार उन्हें अलग कर रक्खा है। गोवर्धनलीला बड़ी, दशमस्कन्ध टीका, नागलीला, भागवत आदि तो सूरसागर के ही भाग हैं। डा० जनार्दन मिश्र ने अपनी पुस्तक में सूरसागर के उन पदों को प्रक्षिप्त माना है जो कि सूरजदास और सूरश्याम के नाम से आये हैं। यदि यह ठीक मान लिया जाय तो जो ग्रन्थ सूरजदास के नाम से मिलते हैं उन्हें सूरदास का कतई नहीं कहा जायेगा। वे ग्रन्थ दो हैं-एकादशी महात्म्य और राम जन्म। इसके अतिरिक्त नल-दमयन्ती तथा व्याहलो भी सूरदास के ही कहे जाते हैं, किन्तु डा० मोतीचन्द इन्हें—नल दमयन्ती को—सूर का नहीं मानते। व्याहलो के विषय में भी अभी कोई निर्णय नहीं हो सका है।

अब सूरदासजी के तीन ही ग्रन्थ शेष रह जाते हैं। सूरसागर, सूरसारावली और साहित्यलहरी। इन तीनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ये ग्रन्थ वास्तव में तीन नहीं हैं।

सूरसारावली—सूरसारावली जैसे कि उसके नाम से ही पता चलता है कि वह स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर सूरसागर की अनुक्रमणिका है। सम्भव है कि स्वयं सूरदास ने इन पदों की रचना की हो और इन्हें सूरसागर की भूमिका स्वरूप रख दिया हो, किन्तु यदि सारावली और सूरसागर की तुलना सूक्ष्म रूप से तथा विस्तार पूर्वक की जाय तो उसमें ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे जो सूरसागर में नहीं हैं। इससे कुछ लोगों को इसके सूर-कृत होने में सन्देह है। इसमें कृष्ण की संयोग लीला, वसन्त, हिंडोला, और होली आदि के प्रसंग कृष्ण के

कुरुक्षेत्र से लौटने के बाद लिखे गये हैं। इसी ग्रन्थ में सूर के एक लक्ष पद लिखने की बात भी कही गई है। "ता दिन ते हरि लीला गाई, एक लक्ष पद बंद।" अभी इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

साहित्य-लहरी—यह भी सूरसागर का एक अंश सा जान पड़ती है। इसमें सूरसागर के वे पद हैं जिनमें अपेक्षाकृत पाण्डित्य अधिक है। वास्तव में यह एक शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें नायिका भेद, अलंकार, रसनिरूपण आदिके उदाहरण स्वरूप बहुत से पद उपस्थित किये गये हैं। इसमें अनेक पद दृष्ट कूट के भी हैं। ऐसे ही कुछ दृष्ट-कूट के पद सूरसागर में भी हैं। कुछ ऐसे भी पद हैं जो सूरसागर में नहीं मिलते। कृष्ण की बाल-लीला से सम्बन्ध रखने वाले भी बहुत से पद हैं। महाभारत की कथा के भी कुछ प्रसंग इसमें आ गये हैं।

सूरसागर—सूरदास का प्रमाणिक ग्रन्थ वास्तव में यही है। अन्य ग्रन्थ तो इस वृहत् ग्रन्थ की छाया-मात्र हैं। यह एक ग्रंथ नहीं वास्तव में कई ग्रंथों का संग्रह है। इसके पूर्वार्ध ही में (१) विनय, वैराग्य, सत्संग, गुरु-महिमा सम्बन्धी मौलिक पद (२) बाल-लीला (३) प्रेम-लीला, (४) दानलीला, (५) छोटी मानलीला, (६) मानलीला, (७) विरहलीला, (८) दो भ्रमर गीत तथा (९) श्रीमद् भागवत कथा का अनुवाद है। इसके उत्तरार्ध में नन्द-यशोदा एवं राधा-माधव मिलन सम्बन्धी मौलिक पद मिलते हैं। यह विभाजन दशम स्कन्ध के अनुसार है। इसके अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि यह प्रबंध काव्य नहीं। इसमें प्रसंगानुसार कृष्ण लीला संबंधी भिन्न-भिन्न पद संग्रहीत हैं। इसमें श्रीकृष्ण का प्रेममय स्वरूप का चित्रण किया गया है। महाभारत के कर्मयोगी एवं राजनीतिज्ञ कृष्ण का नहीं। इसका कारण यह है कि सूरदास जी पुष्टिमार्गी थे और उन्होंने कृष्ण का प्रथम रूप ही चित्रित किया है। इस ग्रंथ का रचनाकाल भी अनिश्चित है। विद्वानों ने इसका रचना काल सं० १५७६–१६०७ माना है। इसमें कुल बारह स्कन्ध हैं। कुछ लोग इसमें बारह स्कन्ध देख-कर इसे भागवत् का अनुवाद कहते हैं, पर यह ठीक नहीं, क्योंकि

समस्त भागवत् की कथाओं का समावेश उसमें नहीं हुआ; फिर भी हमें इस विषय पर सूरसागर में सूरदास जी का निम्न कथन मिलता है :—

व्यास कहे शुकदेव सों द्वादश स्कन्ध-बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ॥

इस उल्लेख से यह जान पड़ता है कि सूरदास ने द्वादश स्कन्ध पर्यन्त की कथाओं को, जो व्यास जी द्वारा कही गई हैं, गाया है।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि सूरसागर में १२ स्कन्ध हैं। भिन्न-भिन्न स्कन्धों में विभिन्न कथायें हैं। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण दशमस्कन्ध है यह सूरसागर का प्राण है। इसमें कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा गमन तक की कथा है। भागवत से बहुत कुछ साम्य होने पर भी सूरकी मौलिकता के दर्शन इसी स्कन्ध में होते हैं।

समस्त सूरसागर में प्रथम स्कन्ध के विनय सम्बन्धी पद, तथा दशम स्कन्ध या अन्य स्कन्धों में आये हुए भक्ति और गुरु महिमा आदि विषयों से सम्बद्ध पद ही मौलिक कहे जा सकते हैं।

प्रश्न ४—क्या सूरसागर भागवत् का अनुवाद है ? सप्रमाण बताइये, साथ ही सूर की मौलिकता का निर्देश भी कीजिये।

उत्तर—प्राचीन काल से ही लोगों ने सूरसागर को भागवत् का अनुवाद समझ रखा है। इस धारणा की पुष्टि इस प्रकार होती है कि भागवत् में बारह स्कन्ध हैं और सूरसागर में भी बारह ही स्कन्ध हैं। भिन्न-भिन्न स्कन्धों की कथाओं से भी समानता है। अंतःसाक्ष्य से तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। श्री सूरदास जी ने स्वयं कहा है—

श्रीमुख चारि श्लोक दिये, ब्रह्मा को समुझाई।
ब्रह्मा नारद सों कहे, नारद व्यास सुनाई॥
व्यास कहे शुकदेव सों, द्वादस स्कन्ध बनाई।
सूरदास सोई कहै, पद भाषा करि गाई॥

जैसे शुक को व्यास पढ़ायो।
सूरदास तैसे कहि गायो ॥

✿ ✿ ✿ ✿

सूर कह्यो भागवत अनुसार ।

✿ ✿ ✿ ✿

सूर कहै भागवत अनुसार ॥

सूरदास जी के अपने मुख से भी ऐसे वचन कहे जाने पर सूरसागर व भागवत का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि सूरसागर भागवत का अनुवाद या भावानुवाद नहीं, किन्तु कवि की अपनी स्वतंत्र रचना है। सूरसागर के स्कन्धों में पद संख्या देखने से प्रतीत होता है कि उसमें केवल दशम स्कन्ध पूर्वार्ध की प्रधानता है अर्थात् दशम स्कन्ध पूर्वार्ध की कथा तो भागवत व सूर-सागर दोनों में विस्तार से कही गई है, परन्तु जहाँ भागवत में अन्य स्कन्धों की कथायें भी विस्तार पूर्वक हैं, वहाँ सूर सागर में उन कथाओं को बहुत थोड़े पदों में समाप्त कर दिया गया है। भागवत के श्लोकों और सूरसागर के पदों की संख्या का मिलान करने से भी यह बात और स्पष्ट हो जाती है। सूरसागर में दशम स्कन्ध के बाद संख्या में प्रथम व नवम स्कन्ध ही बड़े हैं। शेष स्कन्धों की संख्या कुल मिलाकर १०६ है, जो कि नवम स्कन्ध की संख्या से भी कम है, पर भागवत के श्लोकों की संख्या में इतनी विषमता नहीं। इस तुलना से अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि वास्तव में सूरसागर भागवत का अनुवाद है तो भी सूरदास ने दशम स्कन्ध की कथा छोड़कर अन्य स्कन्धों की कथाओं को भागवत की तुलना में बहुत संक्षेप से लिखा है।

भागवत का मुख्य विषय भगवान् विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है। इसके द्वारा भागवतकार भगवान् की अपरिमित शक्ति दिखाना चाहते हैं। दशमस्कन्ध के अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से यह पता चलता है कि कृष्णावतार पर उनका विशेष मोह

है। भागवतकार ने विष्णु के समस्त अवतरों में राम व कृष्ण के अवतार को प्रमुख माना है। अन्य अवतारों की कथा भी कही गई है। यद्यपि सूरसागर में भी अवतारों के उपस्थित करने का वही क्रम है जो भागवत में है, तथापि राम व कृष्ण अवतारों के अतिरिक्त अन्य अवतारों का उल्लेख नाम मात्र के लिये ही किया गया है। रामावतार की कथा सूरसागर में भागवत की अपेक्षा अधिक विशद रूप से वर्णन की गई है। दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध की कथायें दोनों में बहुत कुछ मिल जाती हैं, किन्तु सूरसागर में यह कथा केवल १३८ पदों में बहुत संक्षेप से कही गई है और भागवत में यही कथा ४१ अध्यायों में कही गई है। भागवत में ऐसे अनेक मनोहारी स्थल नहीं हैं जो सूरदास जी की मौलिक कल्पना है। सूरसागर का प्रायः सारा विस्तार दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में समाप्त हो जाता है।

इस तुलना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सूरसागर का सब से महत्त्वपूर्ण भाग दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध है। इसमें कृष्ण के जन्म से से लेकर उनके मथुरा जाने और वहाँ से उद्धव को ब्रज भेजने और गोपियों का समाचार जानने तक की कथा है, परन्तु यह पहले भी कहा जा चुका है कि इस भाग में कृष्ण का जो चित्रण हुआ है वह भी भागवत के इस भाग से बहुत भिन्न है। भागवत के कृष्ण शक्तिशाली हैं। स्थान-स्थान पर उनका वही रूप दिखाने का प्रयत्न किया गया है, उसमें कृष्ण की अलौकिक लीलायें ही अधिक हैं, लौकिक कम।

वैसे भी सूरसागर को भागवत का अविकल अनुवाद नहीं कहा जा सकता। वह एक स्वतन्त्र रचना है। 'बालिकाराधा' के बालक कृष्ण के राधा के साथ खेलने के प्रसङ्ग और भ्रमर-गीत की व्यंग्यमयी उक्तियाँ भागवत में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेंगी। भागवत में उद्धव की कथा आती है पर उनके गोकुल पहुँचने पर गोपियाँ उन्हें चिढ़ाती नहीं। वे जो कुछ कहते हैं गोपियाँ चुपचाप सुन लेती हैं। उद्धव द्वारा कृष्ण का सन्देश पाकर उनकी विरह व्यथा शान्त हो जाती

है। भागवत में कृष्ण के प्रति दिये गये उनके उलाहने भी उतने तीव्र नहीं, जितने कि सूरसागर में हैं। निर्गुण तथा सगुण का झमेला भी भागवत में दिखाई नहीं देता, जो सूरसागर के भ्रमर-गीत का प्रधान अङ्ग है। इसके अतिरिक्त भागवत सर्ग, प्रति सर्ग आदि विषयों का वर्णन करती हुई भक्ति को मूर्द्धन्य बना देती है, पर सूरसागर में मुख्य रूप से राधा-कृष्ण लीला को ही प्रधानता दी गई है।

जो हो, हम यह कह चुके हैं कि सूरसागर भागवत का अविकल अनुवाद नहीं। उसे स्वतन्त्र अनुवाद भी नहीं कहा जा सकता। सूरसागर के कुछ स्कन्धों में विशेषकर पहले और दूसरे में सूरदास ने माया, शक्ति, गुरु महिमा आदि प्रसङ्ग अपनी ओर से जोड़ दिये हैं। इसके अतिरिक्त सूरसागर में मङ्गलाचरण व प्रस्तावना को कोई स्थान नहीं। यहाँ तक कि वे भी पद इसमें हैं जो उन्होंने आचार्य महाप्रभु के मिलने से पूर्व लिखे थे। इसके अतिरिक्त सूरसागर में अनेक स्थानों में एक ही कथा की पुनरुक्ति भी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सूरदास जी ने भागवत का आधार केवल आंशिक रूप में कथा प्रसंगों के मूल रूप में किया है। हाँ दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध के अतिरिक्त उन्होंने अन्य स्कन्धों में अवश्य ही भागवत का आधार लिया है—अनुवाद वह भी नहीं है।

अन्त में यह कहना भी आवश्यक है कि सूरसागर के मौलिक व महत्त्वपूर्ण भाग प्रथम स्कन्ध के वे पद हैं जो कि विनय के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा सम्पूर्ण दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध एवं अन्य स्कन्धों में बिखरे हुए भक्ति, गुरु महिमा आदि विषयों के पद हैं। वास्तव में ये ही अंश सूरसागर के प्रधान अंग कहे जा सकते हैं जो मौलिकता, रसात्मकता और भक्ति भावना की विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रश्न ५—साहित्यलहरी के विषय का विश्लेषण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वह सूर की ही रचना है।

उत्तर—सूरदास जी की तीन प्रमुख रचनाओं में एक साहित्य लहरी भी है। अनेक विद्वान् उसको सूरदास के दृष्टकूट पदों का संग्रह मानते हैं पर उपसंहार के पदों को छोड़कर साहित्य लहरी का शेष सम्पूर्ण भाग स्वतन्त्र रचना ही है। इसके विषय सूरसागर से भिन्न हैं। साहित्य लहरी के विषयों में भी कोई तारतम्य नहीं दिखाई देता। उसमें कृष्ण की बाल लीला से सम्बन्ध रखने वाले पद भी हैं और नायिका भेद के रूप में राधिका के मान आदि का भी वर्णन है। उसमें वियोगिनी प्रोषित पतिका का भी वर्णन है और संयोगिनी विलासवती स्त्री का भी। इसी प्रकार स्वकीया, परकीया, मुग्धा, प्रौढ़ा, धीरा, ज्येष्ठा, विदग्धा आदि नायिकाओं का वर्णन भी पाया जाता है। इसी के साथ-साथ दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, प्रस्तुत आदि अलङ्कारों का भी श्लिष्ट शब्दों में जान बूझकर उल्लेख किया गया है। पद संख्या ७४-७५ में महाभारत की कथा के कुछ प्रसङ्ग भी आये हैं।

साहित्य लहरी के पद दृष्टकूट कहलाते हैं। दृष्टकूटों में यमक, श्लेष, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग है, जिससे अर्थ बोध में कठिनाई आती है। इसके अतिरिक्त इनमें कुछ ऐसे भी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो साहित्य में विशेष अर्थों में रूढ़ हो गए हैं। जैसे—दधिसुत का अर्थ चन्द्रमा, और शैलतनया का अर्थ पार्वती है। साहित्यलहरी के दृष्टकूटों में यमक का एक उदाहरण देखिले :-

सारंग समकर नीक-नीक सम सारंग सरस बखानै।
सारंग बस भय, भय बस सारंग, विषमै मानै॥

इस प्रकार साहित्यलहरी में साहित्य-प्रणयन ही अधिक है। उसके प्रत्येक पद में किसी न किसी अलङ्कार का निर्देश अवश्य है। अलङ्कारों की परिपाटी हिन्दी में चन्दबरदाई से ही चल पड़ी थी। महापात्र विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण से रस-भेद के साथ नायिका-भेद भी प्रारम्भ हो गया था। साहित्य लहरी में ये दोनों बातें

विद्यमान हैं। गुह्य बातों को दृष्टकूटों के रूप में प्रकट करने की प्रणाली भी पुरानी है। विद्यापति की पदावली में भी दृष्टकूट हैं।

सूर की सभी रचना माधुर्य-रस-प्रधान है। यह गोपनीय रस है। साधारण जनता में पहुँच कर यह भी तन्त्रसम्प्रदाय की भाँति अनाचार का प्रसार कर सकता है। अतः माधुर्य रसमयी रचना सर्वसाधारण के लिए अहित कर सिद्ध न हो, इसके लिए आचार्यों ने कहीं-कहीं उसको दृष्टकूटों का वेष पहना दिया है। सामान्य पाठक ऐसी रचनाओं का अर्थ नहीं समझेंगे, फिर अनाचार की सृष्टि कैसी? केवल अधिकारी व्यक्ति ही इसे समझ सकते हैं और वे ही अलौकिक रस का आस्वादन भी कर सकते हैं।

कुछ लोग जिनमें डा० ब्रजेश्वर वर्मा प्रमुख हैं वे साहित्य लहरी को सूर की रचना नहीं मानते इस विषय में उनके मुख्य तर्क हैं, कि:-

१—सूरदास जैसे विरक्त महात्मा व सिद्ध कोटि के ज्ञानी भक्त को अपनी पूर्ण वयोवृद्ध अवस्था में इस प्रकार के काव्य साहित्य के आश्रय लेने की क्या आवश्यकता थी?

२—जब इसमें राधा के नख-शिख का वर्णन नहीं, तब इसे दृष्टकूट शैली में रचने की क्या आवश्यकता थी?

३—सूर सागर आदि बृहत् ग्रंथ में जब उन्होंने रचना काल ही नहीं लिखा, तब ऐसे एक असफल प्रयत्न में सम्बत् आदि देने की क्या आवश्यकता हुई?

इन तीनों प्रश्नों पर विचार करते समय हमको पुष्टिसम्प्रदाय की भक्ति प्रणाली तथा उसके सिद्धान्त को जान लेना आवश्यक है। पुष्टि सम्प्रदाय में भगवान् को श्रुति के प्रमाण—"रसो वैसः"—के अनुसार रसात्मक माना गया है एवं ब्रह्मांड में जहां कहीं भी आनन्दरस की अभिव्यक्ति है, उसे भगवद् रूप ही माना गया है। श्री शुकदेवजी ने भागवत में कहा है कि-"सर्वाः शरत्काव्य कथा रसा श्रयाः" अर्थात् भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी लीलाएं काव्य शास्त्रोक्त प्रकार से भी की हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भी अपनी सुबोधिनी

पुस्तक में उक्त पद्यांश का यही अर्थ किया है। सूरदास जी ने भी भागवत् के उक्त श्लोक के स्पस्टीकरण एवं विशदीकरण में ही समस्त साहित्य लहरी का निर्माण किया है। अतएव इसमें नायिका भेद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

इस पुस्तक का नाम सहित्य का सूचक है फिर भी यह भक्ति की उच्चतम भावनाओं से अनुप्राणित है। इससे कवि का उद्देश्य केवल भगवान् की रहस्यमय लीलाओं का गान मात्र करना था, साहित्यिक नेतृत्व नहीं। दूसरी बात यह है कि इन पदों में काव्योक्त कृष्ण लीलाएँ होने से उन्हें गूढ़ रखना आवश्यक था, अतः इनमें प्राप्त नायकाओं के उल्लेखों में भी कुछ गूढ़ता लाई गई है, जिसके कारण नख शिख वर्णन न होते हुए भी इसमें दृष्टकूट शैली की नितान्त आवश्यकता थी।

डा० वर्मा का साहित्य लहरी को सूरदास की रचना न मानने का कारण का उत्तर यह है कि—श्रीमद्भागवत् की कथाओं का अनुवादात्मक सूरसागर सूरदास की परतंत्र रचना है। इसमें किसी न किसी अंश में भागवत् की कथाओं का अनुसरण है अतः यह स्वतंत्र रचना नहीं है। फिर इस रचना के अनन्तर ही इसके तत्त्व रूप से सूरदास ने सूरसारावली की सैद्धांतिक स्वतंत्र रचना की थी। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख कर दिया है, इससे सूरसागर का भी रचना काल जाना जा सकता है।

डा० वर्मा ने एक आपत्ति और भी उठाई है कि चौरासी वार्ताओं में साहित्यलहरी का कोई उल्लेख नहीं। इसलिये भी हम इसे सूर की रचना नहीं मानते। किन्तु यदि वार्ताओं का गम्भीर अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि समस्त वार्ता साहित्य कथा प्रसंग के रूप से कहा गया है, ऐतिहासिक शैली से नहीं अतः यदि उसमें साहित्य लहरी का नाम नहीं आया तो उसको हम अप्रामाणिक नहीं कहेंगे। एक के विपरीत साहित्य लहरी की दृष्टकूट शैली और सूरसागर की

दृष्टकूट शैली वर्ण विषय व भाषा आदि की दृष्टि से सूरसागर से मिलती है। कुछ उदाहरण देखिये—

(क) ग्रह नक्षत्र अस बेद अरध करि, खात हरष मन बाढ़ौ ॥
—सहित्यलहरी

ग्रह नक्षत्र अस बेद अरध करि, को बरजै हमें खात ॥
—सूरसागर

(ख) जबतें हौं हरि रूप निहारो ।
तबते कहा कहों री सजनी; लागत जग अँधियारो ॥
—साहित्यलहरी

जबते सुन्दर वदन निहारो ।
ता दिन ते मधुकर मन अटक्यो बहुत करी निकरै न निकारो॥
—सूरसागर

(ग) पिय बिन बहत बैरिन बाय ।
मदन बान कमान लायौ करषि कोप चिढ़ाय ॥
—साहित्यलहरी

पिय बिनु नागिनि कारी रात ।
कबहुंक जामिनि होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात ॥
—सूरसागर

साहित्यलहरी व सूरसागर के पद साम्य व भाव-साम्य के ये उदाहरण सिद्ध करते हैं कि ये दोनों रचनायें एक ही कवि की लिखी हुई हैं। उक्त विवेचन से अब यह स्पष्ट हो गया है कि साहित्य-लहरी के लेखक भी महाकवि सूरदास जी ही हैं। इसके विषय में अन्यथा सम्भावना नहीं की जा सकती।

प्रश्न ६—भ्रमर गीत के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए सूर के भ्रमरगीत की विशेषतायें बताइये, साथ ही नन्ददास के भ्रमरगीत से उसकी तुलना कीजिये।

उत्तर—भ्रमरगीत सूरसागर का सब से महत्त्वपूर्ण अंग है। उससे काव्य और दार्शनिक दोनों पक्षों की पुष्टि होती है। काव्य-

और रस की दृष्टि से सूरसागर का यह अंश व्यञ्जना, माधुर्य और वियोग शृङ्गार का सर्व श्रेष्ठ उदाहरण है।

भ्रमरगीत प्रसंग के सर्व प्रथम दर्शन हमें श्रीमद्भागवत् में होते हैं। वह इस प्रकार है कि श्रीकृष्ण कंस के निमन्त्रण पर अक्रूरजी के साथ मथुरा चले गये। वहाँ कंस को मार कर उन्होंने अपने पिता बसुदेव का उद्धार किया। उनको मथुरा में आये काफी दिन हो गये, वे अवधि बीत जाने पर भी गोकुल न गये। तब नन्द, यशोदा आदि बहुत दुःखी हुए। उन गोपियों का तो कहना ही क्या जिनके साथ उन्होंने इतनी लीलाएँ की थीं। बहुत दिन बाद श्रीकृष्ण ने ज्ञानोपदेश द्वारा गोपियों को समझाने बुझाने के लिये अपने सखा उद्धव को ब्रज में भेजा। उद्धव को ही क्यों भेजा? इसका कारण यह था कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। कृष्ण का उनको गोपियों के पास भेजने का यह अभिप्राय था कि वे उनकी प्रीति की गूढ़ता और तन्मयता देखकर शिक्षा ग्रहण करें और सगुण भक्ति मार्ग की सरसता और सुगमता के सामने उनका ज्ञान का गर्व दूर हो। (यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि निर्गुण भक्ति की अपेक्षा सूर सगुण भक्ति की श्रेष्ठता दिखाना चाहते हैं। इसके विपरीत भागवत् में ज्ञान की भी महिमा दिखाई गई है। वहाँ भगवान् का संदेश सुन गोपियों को शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ और वे उसी में लीन हो गईं। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि भागवत् के भ्रमरगीत में कहीं भी गोपियों को व्यंग्यार्थ के प्रयोग करने का अवसर नहीं मिला। सूरदास इस दृष्टि से मौलिक हैं। उन्होंने इसके लिये कंस के दरबार में विद्यमान कुब्जा को इस कार्य के निमित्त चुना है।)

उद्धव ब्रज में आये, उनके आते ही सारे ब्रजवासियों ने उन्हें घेर लिया। वे नन्द-यशोदा से संदेश कह चुकने के अनन्तर गोपियों की ओर फिर कर कृष्ण के सन्देश के रूप में ज्ञान चर्चा छेड़ते हैं। इसी बीच में एक भौंरा उड़ता-उड़ता गोपियों के पास आकर गुन-गुनाने लगता है, तो गोपियां उसी भ्रमर को सम्बोधन करके जो मन में आता है

कहती हैं। इसी से इस प्रसंग का नाम भ्रमरगीत पड़ा है। उद्धव उन के प्रेम भरे उलाहनों को सुनता है और तब उसका ज्ञान का गर्व नष्ट हो जाता है—वह विराग की तूमड़ी में प्रेम का रस भर लेता है।

सूरदासजी ने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं। एक भ्रमरगीत तो भागवत का अनुवाद है, किन्तु उसमें ज्ञान वैराग्य की चर्चा होते भी अन्त में भक्ति की विजय दिखाई है। यह भ्रमरगीत चौपाई छन्दों में है। अन्य दो पदों में हैं। इन प्रथम दो भ्रमर गीतों में भ्रमर के आने का कहीं भी वर्णन नहीं, केवल मधुकर नाम से ही उद्धव को उपालम्भ दिया गया है। तीसरा भ्रमरगीत ही सब में श्रेष्ठ है। इसमें भौंरा भी आता है और तब गोपियां उसे लक्ष्य कर कृष्ण व उद्धव को खरी-खोटी सुनाती हैं।

भागवत् में भी भक्ति की महिमा अवश्य गाई गई है पर ज्ञान के विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा गया। भ्रमर गीत में भी ऐसे ही हैं—भक्ति पर ज्ञान की विजय दिखाई है, किन्तु सूरदास की समस्त भ्रमर-गीत की धारा सगुणोपासना की ओर ही प्रवाहित हो रही है। गोपियां कहती हैं—

सूरदास या निर्गुण सिन्धुहि कौन सकै अवगाह।

× ×

मुक्ति रहो घर बैठि आपने, निर्गुण सुनत दुख पैये।

× ×

कौन काज या निर्गुण सों चिरजीवहु कान्ह हमारे।

इस प्रकार सूर के भ्रमरगीत से स्पष्ट मालूम देता है कि वे निर्गुण की अपेक्षा सगुण का महत्व प्रतिपादित करना चाहते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सूर ज्ञान मार्ग से अनभिज्ञ थे। उन्होंने निराकार ईश्वर की महत्ता "अविगत गति कछु कहत न आवै" या "अविगत गति जानी न परै" कहकर स्वीकार की है। भ्रमरगीत में सूरदासजी ने ज्ञान को निस्सार बताने की चेष्टा की है और उसके लिये आधार बनाया है गोपियों को।

इतना जान लेने के बाद हम थोड़ा सा सूर के इस परमोत्कृष्ण उपालम्भ काव्य का कुछ रसास्वादन भी करेंगे। उद्धव गोकुल आये और उन्हें देखते ही गोपियों को कृष्ण मिलन का सा सुख हुआ—

ऊधो ! पालागों भले आये ।
तुम देखे जनु माधव देखे, तुम त्रयताप नसाये ॥

प्रिय के सम्बन्ध से बहुत सी बातें प्रिय लगती हैं, यही बात स्वाभाविक रूप में उक्त पद में दिखाई है। गोपियां फिर कहती हैं—

सँदेसन मधुवन कूप भरे।
जो कोई पथिक गये हैं ह्यां ते फिर नहीं गवन करे।
कै वे श्याम सिखाय समोधे, कै वे बीच भरे?
अपने नहिं पठवत नन्दनन्दन हमरेउ फेरि धरे।
मसि खूँटी, कागर जल भीजे, शरदव लागि जरे।

गोपियों को झल्लाहट है कि जो भी यहां से संदेशा लेकर गया वह कोई लौटा ही नहीं। कृष्ण की कोई चिट्ठी भी तो नहीं आती। मथुरा की सारी स्याही सूख गई है, कागज भीग गया है और कलम भी जल गई ?

ज्यों ही उद्धव अपनी ज्ञान की बातें कहना आरम्भ करते हैं त्योंहीं गोपियां विषयान्तर होने से सकपका कर पूछती हैं :—

हमसों कहत कोनकी बातें ?
सुनि, ऊधौ हम समझति नाहीं, फिरि फिर बूझति तातें।

फिर वे उद्धव को बनाने लगती हैं और कहती हैं:—

ऊधो! जान्यो ज्ञान तिहारो।
जाने कहा राजगति लीला अन्त अहीर विचारो।
आवत नाँहि लाज के मारे, मानहु कान्ह खिसान्यो।
हम सबै अयानी, एक सयानी कुबजा सों मन मान्यो।
ऊधो जाहु बांह धरि ल्याओ सुन्दर श्याम पियारो।
व्याहौ लाख, धरौ दस कुंबरी, अन्तहि कान्ह हमारो॥

उद्धव अपनी बात कहते जाते हैं पर गोपियां विश्वास ही नहीं करतीं कि यह श्माम का सन्देश है। वे उसे कहती हैं—

"ऊधो ! जाय बहुरि सुनि आवहु कहा कह्यो है नन्द कुमार"

कभी कहती हैं—

श्याम तुम्हें ह्यां नहीं पठाये तुम हो बीच भुलाने।

फिर कहती हैं—

मधुकर जानत है सब कोऊ।
जैसे तुम औ मीत तुम्हारे, गुननि निपुन हौ दोऊ।
पाके चोर हृदय के कपटी, तुम कारे औ वोऊ ॥

गोपियां उद्धव को कभी भोला सा व्यक्ति समझ कर अनुमान करती हैं कि कृष्ण ने इनके हाथ संदेशा भेज हँसी न की हो। अतः वे पूछती हैं—

ऊधो ! जाहु तुम्हें हम जाने।
सांच कहो तुमको अपनी सों बूझति बात निदाने।
सूर श्याम जब तुम्हें पठाये तब नेकहु मुसकाने ?

उद्धव सच बताओ जब कृष्ण ने तुम्हें भेजा तब क्या वे थोड़ा-सा मुस्काये थे ?

गोपियां उद्धव के ज्ञान की कद्र भी करती हैं। उद्धव के कुछ घबरा से जाने पर वे कहती हैं—

ऊधो ! जोग विसरि जनि जाहू।
बांधहु गांठ, कहूँ जनि छूटै, फिर पाछे पछिताहू।

कभी-कभी गोपियों की चित्तवृत्ति अत्यन्त मलीन हो जाती हैं और वे कहती हैं—

ऊधो ! हम हैं तुम्हरी दासी।
काहे को कटुवचन कहत हो करत आपनी हाँसी।

कभी वे अपने दुःखका वर्णन करती हैं—

बिनु गोपाल वैरिनि भई कुँजें।
तब ये लता लगति अति शीतल, अब यह विसम ज्वाल की पुँजैं।

जब वे अपना दुःख कहते थक जाती हैं तो गौओं व नन्द यशोदा के दुःख का वर्णन करती हैं—

ऊधो ! इतनी कहियो जाय।
अति कृश गात भई ये तुम बिनु परम दुखारी गाय।

कभी राधा सोचती है मैंने कृष्ण को देखकर एक दिन मान किया था शायद उसी से वे नाराज होगये हों—

मेरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियां छतियां लिख राखीं जे नन्दलाल कहीं।

गोपियों के हृदय को वियोग कभी-कभी ऐसा कोमल उदार और सहिष्णु कर देता है देखिये—

फिर ब्रज बसहु गोकुलनाथ।
बहुरि तुमहि न जगाय पठवौं गोधनन के साथ।
बरजों न माखन खात कबहूँ, देहूँ देन लुटाय॥
कबहुँ न दैहों उरहनो जसमति के आगे जाय॥

इतना दुःखी होने पर भी वे कृष्ण का स्मरण तो करती ही हैं कृष्ण के प्रेम को ही सर्वस्व समझती हैं। उद्धव जी उन्हें ज्ञान देते हैं पर वे यही कहती हैं—

मधुकार ! कौन मनायो मानै ?
सिखहु तिनहि समाधि की बातें जे हैं लोग सयाने।
हम अपने ब्रज ऐसेहि बसिहैं बिरह बाय बौराने॥

उद्धव जब बार-बार उन्हें योग साधना का ही उपदेश देते हैं तो वे बड़ी चतुरता से उत्तर देती हैं—

उधो मन नाहीं दसबीस।
एक हुतो सो गयो श्याम संग को आराधे ईश।

मन जब एक था उसको तो कृष्ण ले गये अब ईश्वर की आराधना करे कौन ? और अब दुःख तो इसी बात का है कि कृष्ण मन को भी लेकर साथ चले गये—

ऊधो ! मन नाहीं हाथ हमारे।

रथ चढ़ाय हरि संग लेगये मथुरा जबैं सिधारे।

नहीं तो भला हम तुम्हारे योग को छोड़ देतीं ? तुमतो उसे प्रेम से जो लाये थे। इस प्रकार उन्होंने योग सीखने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

उद्धव उनको कहीं ये न कहें कि "जब मैं तुम्हें दवाई दे रहा हूँ जिससे कि वियोग का पल्ला ही छूट जाय तो तुम तब भी क्यों कृष्ण प्रेम में ही फँसी हो" तो गोपियां कहती हैं—

ऊधो ! मन माने की बात।

दाख छुहारे छांड़ि अमृत फल विष कीरा विष खात।

× × ×

जरत पतंग दीया में जैसे औ फिर फिर लपटात।

भ्रमर गीत में जहां स्मरण "आदि की भावनायें आई हैं वैसे ही "असूया" की बड़ी वक्रतापूर्ण व्यंजनायें मिलती हैं। जब उद्धव कृष्ण का सन्देश कह अपनी ज्ञान चर्चा छेड़ते हैं तभी गोपियाँ कहती हैं कि यह कृष्ण का सन्देश नहीं जान पड़ता। यह तो कुबड़ी पीठ वाली की कारस्तानी मालूम देती है—

मधुकर ! कान्ह कही नहिं होहीं।

यह तो नई सखी सिखई है निज अनुराग बरोहीं॥

सचि राखि कूबरी पीठ पै ये बातें चकचोंही।

फिर वे "असूया" का भाव इन स्पष्ट शब्दों में प्रकट करती हैं कि इस समय कृष्ण की चहेती कुब्जा का ही जीवन सफल है—

जीवन मुँह चाही को नीको।

दरस-परस दिन राति करति है कान्ह पियारे पी-को॥

गोपियाँ राधा को सम्बोधित करके वाग्वैचित्रता से कहती हैं:—

मोहन माँग्यो अपनो रूप।

या ब्रज बस अबैं तुम बैठी, ता बिनु तहाँ निरूप॥

अरी ! कृष्ण का रूप तुम पी गई हो, अतः वह उसके बिना वहाँ

निरूप—निराकार—हो रहे हैं। राधा भी इसी बाँकेपन से कृष्ण के हृदय से न निकलने का कारण बताती हैं:—

उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसेहु निकसत नहिं, ऊधो! तिरछे ह्वै जु अड़े।

कृष्ण की मूर्ति हृदय में तिरछी होकर अड़ गई है निकले तो कैसे?

उद्धव ब्रह्म का निरूपण करते हैं, गोपियों की समझ में वह नहीं आता। वे कहती हैं—

रेख न रूप, बरन न जाके नहिं ताको हमें बतावत।
अपनी कहौ, दरस वैसे को तुम कबहूँ हौ पावत?

इसके साथ ही गोपियाँ उद्धव से यह भी कहती हैं कि उद्धव जी जिसका ध्यान करने को तुम कहते हो उसका कुछ परिचय तो दो—उसके बिना ध्यान कैसे लगे—

निर्गुण कौन देश को वासी?
मधुकर हँसि समझाय सौंह दे बूझति साँच, न हाँसी।

वियोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत जितने भी मनोभाव हो सकते हैं उन सबका वर्णन भ्रमरगीत में है। इस प्रकार सूरदास ने पार्थिव में अपार्थिव की व्यंजना की है।

सूर और नन्ददास दोनों के भ्रमर गीतों में भक्ति को ज्ञान से बढ़कर सिद्ध किया गया है। इतना होने पर भी दोनों की प्रणाली भिन्न है। सूरदास की प्रणाली में मीठी चोट है तो नन्ददास की प्रणाली में तीक्ष्ण। सूर की गोपियाँ मृदुभाषिणी, सरल, एवं नम्र हैं, अपनी दीनता से उद्धव को भी मूक कर देती हैं तो नन्ददास की गोपियाँ विदुषी हैं मुखर हैं वे उद्धव को पापी तक कह देती हैं—"जात किन पातकी"। उपहास या व्यंग्य सूर की गोपियों ने भी किया है किन्तु मर्यादित—पर नन्द की गोपियों का उपहास अमर्यादित हो गया है। जैसे—

कुबिजा तीरथ जाइ कियो इन्द्रिन को मेला।

इस प्रकार नन्द की गोपियाँ नन्द को तर्क से परास्त करती हैं तो र की भोलेपन से ।

अन्त में इतना कहना है कि भागवत् के बाद सूरदासजी ने ही सर्व थम भ्रमर-गीत की रचना की, और उसमें इतनी सरसता भरी कि ाद में भी सभी कृष्ण कवियों ने इस पर कुछ न कुछ लिखा । वास्तव भ्रमर-गीत सूर की अपूर्व देन है ।

प्रश्न ७—"वात्सल्य के क्षेत्र का जितना अधिक उद्घाटन र ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं, इसका कोना-कोना झांक आये हैं ।" इस उक्ति से आप कहां तक हमत हैं ? यदि हैं तो प्रमाण पुरस्सर इसकी पुष्टि कीजिये ।

उत्तर—महाप्रभु वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण को इष्टदेव के रूप में स्थित किया है । उन्होंने कृष्णलीला पर इतना बल दिया है कि तना अन्य सम्प्रदाय वालों ने नहीं दिया । लीलागान ही उनकी क्ति थी । कृष्ण की बाललीला का सम्बन्ध विशेष रूप से नन्द व शोदा से था । इसमें भी यशोदा नारी व माता थीं । अतः उनका ौर कृष्ण का सम्बन्ध अधिक मधुर और पूर्ण था । इसीलिये जब ाव्य में कृष्ण का बाल-चरित्र सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ तब हन्दी साहित्य में एक नये रस की प्रतिष्ठापना हुई । वह रस था ात्सल्य ।

यशोदा-कृष्ण सम्बन्ध की कथा को दो भागों में विभक्त किया ा सकता है । (१) जब कृष्ण माता यशोदा के समक्ष ब्रज में थे ौर (२) जब वे मथुरा चले गये । इनको हम क्रमशः संयोग व वयोग वात्सल्य कह सकते हैं । सूरदास ने इसके दोनों पक्षों का न्दर चित्रण किया है । वात्सल्य (वियोग) के सम्बन्ध में उनके पद धिक नहीं उन्होंने तो वात्सल्य (संयोग) पर ही अपनी कलम का माल दिखाया है। उन्होंने मातृ-हृदय की प्रत्येक परिस्थिति का बड़ा क्ष्म चित्रण किया है । उन्होंने अपने व्यक्तित्व को यशोदा के यक्तित्व में मिलाकर श्रीकृष्ण की बाल-लीला में भाग लिया है ।

यशोदा-कृष्ण के प्रसंग में ही स्वयं सूर के वात्सल्यपूर्ण हृदय का चित्रण हो गया है।

रस की निष्पत्ति में स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव व संसा भावों की आवश्यकता होती है। वात्सल्य-रस में स्थायी भाव बा प्रेम है। आलम्बन बालक, आश्रय माता, उद्दीपन बालक का शार रिक सौन्दर्य, बुद्धि कौशल बालकेलि आदि; अनुभाव, प्रसन्नता, हास गोद लेना, चूमना आदि; संचारी भाव पुलक, स्मृति, हर्ष आदि है सूर ने वात्सल्य रस के अङ्ग प्रत्यङ्ग का वर्णन किया है। य आलम्बन कृष्ण हैं, आश्रय यशोदा; उनकी लीलायें उद्दीपन; यशो का प्रसन्न होकर हँसना आदि चेष्टायें अनुभाव हैं।

सूर का बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान उन्हें वात्सल्यरस की सृष्टि सहायता देता है। यद्यपि बाललीला में कहीं-कहीं अद्भुत रस आ गया पर वह प्रधान नहीं गोप है, अतएव खटकने वाला नहीं। इस सामान्य विवेचन के बाद हम वात्सल्य रस आस्वादन करें।

श्रीकृष्ण ने सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण किये हुए हैं। यशोदा हृदय में जो सुख उमड़ता है उसके दर्शन कीजिये—

आंगन श्याम नचावहिं यशुमति नँदरानी।
तारी दै-दै गावहिं मधुरी मृदुबानी॥
पायन नूपुर बाजई, कटि किंकनि कूजै।
नन्हीं एड़ियन असलता फल बिम्ब न पूजै॥

× × ×

हौं बलि जाउँ छबीले लाल की।
धूसर धूरि घुटुरुयन रेंगनि बोलनि वचन रसाल की।

....

सूरज प्रभु के प्रेम मगन भई ढिंग न तजति ब्रज बाल की॥

यशोदा या गोपियां कृष्ण के इस सौंदर्य को देखकर कृष्ण सामीप्य नहीं छोड़ना चाहतीं। एक अन्य उदाहरण लीजिये—

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मणिमय कनक नन्द के आँगन मुख प्रतिविम्ब पकरिवे धावत॥
कबहुँ निरखि हरि आप छांह को करसों पकरन को चित चाहत।
किलकि हँसत राजति द्वै दतियाँ पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत॥

इस पद में अपने मुख प्रतिविम्ब को देखकर वालकृष्ण का उसे कड़ने दौड़ना आदि का नैसर्गिक वर्णन हुआ है। सूर की यह अनु-भ विशेषता है कि वह स्वाभाविक वाल दशाओं के चित्रण द्वारा ठकों के मन में सहज ही रसोद्रेक कर देता है।

अव निम्न पद में बालकों को सुलाने का एक दृश्य देखिये :—

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं वेगिहि आवे तो को कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जाने मौन ह्वै ह्वै रहि करि करि सैन बतावै॥
इहि अन्तर अकुलाय उठे हरि यशुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नन्द भामिनि पावै॥

बच्चों को सुलाने के लिये गीत गा गा कर पालने में झुलाना और रे-धीरे थपकी देना अचूक साधन है। यशोदा भी यही कर रही। इसमें घरेलू बातें हैं, बात सामान्य सी है, पर इसी सामान्य का ने कितनी सजीवता से वर्णन किया है।

सूरसागर में ऐसे दृश्यों की कोई कमी नहीं, जिन्हें देख दर्शक नहीं होते। बालदशा के न जाने कितने विभिन्न रूप सूर अपनी द आँखों से दिखाई देते थे। एक और चित्र देखिये। बाल कृष्ण गन में घुटनों के वल चल रहे हैं। नन्दरानी उसे देखती हैं। कृष्ण भी हँसते हैं कभी गिर पड़ते हैं। नन्द इस दृश्य को देख परम नन्दित होते हैं।

माता मन में अभिलाषा करती थी कि कृष्ण चलने लगे, आज

अपनी उस अभिलाषा को पूर्ण होता देख वह मन में प्रसन्न होती कृष्ण की शोभा भी वरणी नहीं जाती।

कान्ह चलत पग दै दै धरनी।
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नंद घरनी।
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह है अति मन हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरत है सो छवि जात न बरनी।

श्रीकृष्ण की बाल छवि का और चित्र देखिये--

शोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत, रेनु तनु मंडित मुख दधि लेप किये।

× × × ×

मेरो माई ऐसो हठी बाल गोविन्दा।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन को माँगै चन्दा।

श्रीकृष्ण की इस बाल छवि में जहाँ अनुपम शारीरिक सौ प्रकट हुआ है, वहाँ उससें आन्तरिक बुद्धिचातुर्य भी कम न कृष्ण एक दिन सन्ध्या समय माखन चोरी के लिये एक घर में गये। दही में हाथ डाला ही था कि गोपी ने आकर पकड़ लि गोपी कहती है:—

श्याम कहा चाहत से डोलत।
बूझे हूते बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत॥
सूने निपट अँधियारे मन्दिर दधि भाजन में हाथ।
अब कहि कहा बनै हौ उत्तर कोऊ नाहिं न साथ॥

कृष्ण अपनी सहज बुद्धि चातुर्य से उत्तर देते हैं—

मैं जान्यो यह घर अपनो है या धोके में आयो।
देखत हो गोरस में चींटी काढ़न को करनायो॥

यह उत्तर सुनकर गोपी मुस्कराने लगी:—

सुनि मृदु वचन निरखि मुख शोभा ग्वारिनि मुरि मुसकानी।

अपनी माखन चोरी को कृष्ण किस भाँति छुपाते हैं इसका एक उदाहरण देखिए:—

मैया मैं नहिं माखन खायो ।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ॥
देखि तुही सीके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने में कैसे करि पायो ॥
मुख दधि पोंछ कहत नन्द नन्दन दोना पीठि दुरायो।
डारि साँटि मुसुकाई तबहि गहि सुत को कंठ लगायो॥

एक बार कृष्ण बलदाऊ के साथ खेलने चले गये। खेलते-खेलते झगड़ा होगया और बलराम कह बैठे "तुझे तो दाई को पैसे देकर मोल लिया है"। कृष्ण रोते माँ के पास आये और कहने लगे:—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजाओ।
मोसों कहत मोल को लीनों तू जसुमति कब जायो ॥
कहा कहों इहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता कोहै तुमरौ तात ॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तूकत श्याम सरीर ।
चुटकी दैदै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर ॥

× × ×

खेलन अब मेरी जात बलैया ।
जबहिं मोहि देखत लरिकन संग तबहि खिजत बल भैया ॥
मोसो कहत पूत वसुदेव को देवकी तेरी मैया ।
मोल लयो कछु दै वसुदेव को करि करि जतन बढैया ॥

मातृ हृदय की अभिव्यंजना जितनी इसमें हुई है शायद ही अन्यत्र हो। गोपियाँ नित्य यशोदा को उलाहना कृष्ण की चोरी का देती थीं। एक दिन माता ने उन्हें ऊखल से बाँध दिया। जब वे हिचकियाँ भर-भर रोने लगे तो गोपियाँ यशोदा को निष्ठुर कहने लगीं। इस पर यशोदा कहती हैं—

कहनि लगी अब बढ़ि-बढ़ि बात ।
ढोटा मेरो तुमहि बँधायो, तनिकहि माखन खात ॥

× × × ×

मेरे लाल को प्राण खिलौना ऐसे को ले जैहै री।
नेंक सुनन जो पैहों ताकों, सो कैसे ब्रज रहै री ॥

मातृ हृदय की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति है इस पद में।

यह तो हुई कृष्ण के ब्रज में रहने तक की बात। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर जो कुछ माता यशोदा कृष्ण को याद करती हैं और उसमें अपने को घुला देती हैं, उससे वत्सलता की रही सही कसी भी पूर्ण हो जाती है। वे कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं को देख उन्हें स्मरण करती हैं और कहती हैं :—

मेरे कुँवर कान्ह विनु सब वैसे ही धरयो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै॥
सूने भवन यशोदा सुत के गुनि-गुनि सूल सहै।

× × × ×

निसि बासर छतियाँ लै ल्याऊँ,
बालक लीला गाऊँ॥
वैसे भाग बहुरि फिरि ह्वै हैं,
मोहन मोद खवाऊँ॥

मातृ हृदय का एक अन्य उदाहरण देखिए। यशोदा पथिक से कहती हैं :—

सँदेशो देवकी सों कहियो।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की मया करति ही रहियो॥
यद्यपि टेव जानि तुम उनकी तऊ मोही कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि माखन रोटी भावै॥
तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम के न्हाते॥

वात्सल्य रस के अन्तर्गत यशोदा के हृदय का जो इतना चित्रण हुआ है उसका कारण यह है कि वात्सल्य का पूरा-पूरा अनुभव मातृ-हृदय को ही होता है। कृष्ण के संयोग व वियोग दोनों अवस्थाओं में कृष्ण उसके प्राण हैं। संयोग के अवसर पर उसे वियोग

की तनिक भी चिन्ता नहीं और वियोग में उनके गुणों को भूल नहीं पाती। उनका वात्सल्य जब पूर्णता को प्राप्त होता है तो वह पति प्रेम के भी ऊपर उठ जाती हैं। वे नन्द को उलाहना देती हैं कि उन्होंने भी दशरथ के पथ का अनुसरण क्यों नहीं किया। सूरदास की ही यह श्रेष्ठता है कि वे इसको पूर्णतया अभिव्यक्त करने में सफल हुए। इस प्रकार हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि सूर ने वात्सल्य का कोना-कोना झाँका है और उसका उद्घाटन पूर्णता से किया है।

प्रश्न ८—भारतीय साहित्य में राधा के व्यक्तित्व के विकास पर समीक्षात्मक विचार प्रकट कीजिये।

उत्तर—आज जो राधा हमारे जीवन में इतना घुल-मिल गई है, उसके सम्बन्ध में भागवत में भी कुछ उल्लेख नहीं मिलता। अन्य पुराणों में भी उसका नाम नहीं आया। हाँ भागवत के दशवें स्कन्ध में एक गोपी का नाम अवश्य आया है जो श्रीकृष्ण को सर्वाधिक प्रिय थी। रासलीला में जब श्रीकृष्ण गोपियों का गर्व दूर करने के लिये अन्तर्धान हो गये, तब उन्होंने कृष्ण की बहुत खोज की, वे नहीं मिले, फिर उन्हें एक स्थान पर उनके चरण चिह्न दिखाई दिये। उन्होंने निश्चय किया कि यह चरण कृष्ण के ही हैं। निकट जाकर जब उन्होंने देखा तो उन चरण चिह्नों के साथ उनको किसी ब्रज-युवती के चरण चिह्न भी दीखे। वे व्याकुल हो गईं और कहने लगीं—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रातो यासनपद् रहः॥

अर्थात् अवश्य इस गोपी ने भगवान् की आराधना की है जो कृष्ण हमें छोड़ कर उसे साथ ले गये हैं।

उक्त उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि वह गोपी कृष्ण को बहुत प्रिय थी, भागवत में उसका नाम नहीं है। सम्भव है इसके अनन्तर किसी कवि ने "आराधित" शब्द से राधा की कल्पना करली हो। वैसे भी "आराधितः" से राधा अर्थ लेना कठिन कार्य नहीं।

एक विचार यह भी कि यहां शिव-पार्वती की पूजा प्रचलित थी, उसी के आधार पर विष्णु व लक्ष्मी की भी पूजा होने लगी। बाद में लक्ष्मी का सम्बन्ध कृष्ण के साथ भी स्थापित हुआ—उनके विष्णु के अवतार होने के कारण—इसी लक्ष्मी को निम्बार्क स्वामी ने वृषभानुजा राधा कहकर, कृष्ण की शाश्वत पत्नी के रूप में उपस्थित किया।

राधा शब्द की उत्पत्ति के विषय में डा० भाण्डारकर कहते हैं कि राधा सीरिया से आये आभीरों की इष्टदेवी है। आभीरों के यहां बस जाने पर उनके बाल-गोपाल सात्वत धर्म के उपदेष्टा भगवान् कृष्ण के साथ सम्मिलित हो गये और कुछ शताब्दियों के अनन्तर आभीरों की इष्ट देवता राधा भी आर्य जाति में स्वीकार करली गई। यही कारण है कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में बाल-गोपालों की लीला तो मिलती है पर राधा का नाम नहीं मिलता। पर इस मत को हम मान्यता नहीं दे सकते, कारण इस देश के किसी भी ग्रन्थ में अहीरों को बाहर से आया स्वीकार नहीं किया गया है। अधिक से अधिक उन्हें द्रविड़ वंश से सम्बद्ध क्षत्रिय माना जा सकता है। यदुवंशी क्षत्रियों से इनका पर्याप्त सम्बन्ध है, हो सकता है दक्षिण के अहीरों में पहले राधा का प्रचार हुआ हो और बाद में कृष्ण भक्ति के साथ उसका सम्बन्ध जुड़ गया हो।

राधा का नाम सर्व प्रथम ब्रह्मवैवर्त पुराण में आता है। कतिपय विद्वानों के मत में यह पुराण वर्तमान रूप में बहुत बाद का लिखा गया है। इस पुराण में आये कुछ शब्द मोदक, जोला आदि बंगाल में प्रचलित जातियों के नाम हैं। वंग देशीय वैष्णव भक्तों पर ही इस पुराण की राधाकृष्ण सम्बन्धी पूजा का सर्व प्रथम सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। इस पुराण ने भक्ति के रूप को ही बदल दिया। राधा के चरित्र को पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापन करने का श्रेय भी इसी पुराण को है। भक्ति के इस परिवर्तित रूप ने वंगीय वैष्णव धर्म को माधुर्य प्रधान बना दिया। जयदेव ने इसी नूतन वैष्णव धर्म का अवलम्बन कर

गीत गोविन्द की रचना की। महात्मा चैतन्य ने भी धर्म की इसी अभिनव धारा का आश्रय लेकर मधुर रस-पूर्ण रामानुजा भक्ति का प्रचार किया।

इन अभिनव धर्म का बीज सांख्य-शास्त्र के पुरुष-प्रकृति वाद में था, जो शिव व शक्ति के रूप में तन्त्रमत में स्वीकार हुआ शक्तिवाद के कारण विद्वान् व जन-साधारण दोनों अधिक आकृष्ट हुए। वैष्णवों का विशिष्टद्वैतवाद सम्भवतः वंशीय भक्तों को नष्ट न कर सका। सम्भवतः इसी कारण इस मत को ब्रह्मवैवर्त में स्वीकृत करा लिया गया। ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण ने राधा को अपना अर्द्धांश और मूलप्रकृति कहा है। आगे चलकर तो राधा और कृष्ण में कोई भेद ही नहीं दिखाया, दोनों एक हैं।

"ममार्द्धांश स्वरूपात्वं मूल प्रकृति रीश्वरी।"

× × ×

"यथा त्वया विना सृष्टिं न च कर्तु मह्ं क्षमः।
सृष्टेराधार भूता त्वं बीज रूपोऽहम च्युतः॥"

अर्थात् राधा सृष्टि का आधार है और कृष्ण अविनश्वर बीज रूप है।

महात्मा सूरदास जी ने भी राधा-कृष्ण में अभेद की स्थापना की है। इन पंक्तियों को देखिये:—

"प्रकृति पुरुष एकै करि जानहु बातनि भेद करायो॥"

ऐसा प्रतीत होता है कि नवीन वेदान्त के मायावाद के मूल में यही प्रकृतिवाद है, जो तन्त्र मत में शक्ति वाद के रूप में स्वीकृत हुआ। बाद में यही शक्ति श्री और राधा बनी।

ब्रह्मवैवर्तकार ने राधा शब्द की व्युत्पत्ति दो रूप से दी है एक है—

रासे संभूय गोलेकें रधाव हरेः पुरः।
तेन राधासमा ख्याता पुराविद्भिः द्विजोत्तमः॥

अर्थात् वह गोलोक में रास में प्रकट हुई हरि के आगे आगे गई अतः रा आरो धा से राधा शब्द बना। दूसरा "रा" दाने धातु से उन्होंने उत्पत्ति की है कि—राकारो दान वाचकः।

सा निर्वाणञ्च तदात्री च तेन राधा प्रकीर्तिता

अर्थात् वह निर्वाण को देने वाली है अतः राधा हुई। ब्रह्मवैवर्त में तो राधा कृष्ण का विवाह भी वर्णित है।

ब्रह्मवैवर्त में जहाँ राधा और कृष्ण में अभेद सम्बन्ध स्थापित किया गया है, वहाँ राधा को कृष्ण की पूरक शक्ति भी कहा गया है। जैसे मिट्टी के बिना कुम्भकार कार्य नहीं कर सकता ऐसे ही कृष्ण भी राधा के बिना कार्य नहीं कर सकते। कृष्ण का अस्तित्व राधा के आश्रय से है। अतः राधा ही सब कुछ है। इसीलिये मध्वाचार्य के शिष्य परम्परा के हित हरिवंश जी ने राधा-स्वामी सम्प्रदाय की स्थापना की व उसमें राधा के ही महत्त्व को स्वीकार किया इस प्रकार धीरे-धीरे राधा का चरित कृष्ण से भी प्रधान हो गया। कविवर विहारी ने अपनी सतसई के आरम्भ में राधा की ही आराधना की है:—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नारि सोय।
जा तन की झांई परै, स्यामु हरित दुति होय॥

प्रश्न ९—सूरदास के दार्शनिक विचारों पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालिये।

उत्तर—सूरदास भक्त हृदय कवि थे। दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या करना उनका लक्ष्य नहीं था। दार्शनिकता की विवेचना के लिये उनके गुरुदेव उपस्थित ही थे। उनका संस्कृत का ज्ञान भी बहुत अल्प था, संस्कृत के ज्ञान के अभाव के कारण वे दर्शन शास्त्रों का अध्ययन भी नहीं कर सके थे। भागवत की कथा भी उन्होंने स्वयं नहीं पढ़ी प्रत्युत महा-प्रभुवल्लभाचार्य के शिष्यत्व ग्रहण करने के अनन्तर आचार्य जी ने भागवत की अनुक्रमणिका उन्हें सुनाई। पुष्टि-मार्ग के धार्मिक सिद्धान्त भी उन्होंने महाप्रभु से ही सुने थे। समय-समय पर सम्प्रदाय की बैठक में दार्शनिकतत्त्वों का जो विवेचन होता था उसे भी उन्होंने आचार्य महा-प्रभु के मुख से ही सुना था। इस विषय में सूरदास जी स्वयं कहते हैं:—

माया काल कछू नहिं व्यापै, यह रस रीति जु-जानी।
सूरदास यह सकल समग्री, गुरु प्रताप पहिचानी ॥

यह कारण है कि हम उनके अनेक पदों में उच्चकोटि के दार्शनिक सिद्धान्त पाते हैं। जिनमें माया जीव ब्रह्म आदि का निरूपण है।

सूरदास वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षित थे, जिसके दार्शनिक मतवाद को शुद्धाद्वैत कहते हैं। अतः उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में भी महाप्रभु के पुष्टिमार्ग का प्रभाव है। वल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म और कृष्ण में कुछ भी अन्तर नहीं। इनके गुण सत्, चित्, आनन्द और रस हैं। उन्हीं से जीव व प्रकृति की उत्पति हुई। जीव में कृष्ण के सत् व चित् गुणों का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु आनन्द तिरोभूत रहा। इसी प्रकार जड़ प्रकृति में केवल सत् तत्व का प्रादुर्भाव हुआ और चित् तथा आनन्दतिरोभूत रहे। वस्तुतः तीनों तत्त्वों की यही विभिन्नता जीव, प्रकृति और परमात्मा के भेदों का कारण है। इसमें माया का कोई हाथ नहीं। उनके मत में जीव भी उतना ही सत्य है जितना कि ब्रह्म। जीव ब्रह्म में कोई विभेद नहीं। दोनों एक हैं। अंश मात्र होने के कारण जीव की शक्ति अपरिमित है और पूर्ण होने के कारण ब्रह्म की शक्तियाँ अपरिमित हैं। जीव के समान ही प्रकृति भी ब्रह्म की आँशिक अभिव्यक्ति मात्र है। आनन्द तथा सत् के तिरोभाव से उसका विकास सम्भव है।

मुक्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुए वल्लभाचार्य जी ने आत्मा तीन प्रकार की मानी हैं (१) मुक्ति योगिन् (२) नित्य संसारिन् (३) तमो योग। नित्य संसारिन् आत्मा की मुक्ति नहीं होती तमोयोग आत्मायें इन से भी निकृष्ट हैं। मुक्त योगिन् आत्मायें ही ऐसी आत्मायें हैं जो मुक्ति प्राप्त कर पाती हैं। मुक्ति योगिन् आत्मायें भी बिना परब्रह्म के अनुग्रह के मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकतीं। इसी अनुग्रह का नाम ही महा प्रभु ने पुष्टि रखा है। उनका विचार है कि भक्ति और अनुग्रह द्वारा मुक्ति ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिये

वल्लभाचार्य जी ने पुष्टि चार प्रकार की बताई हैं—प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्टि पुष्टि तथा शुद्ध पुष्टि।

प्रवाह पुष्टि के अनुसार भक्त संसार में रहता हुआ भी श्रीकृष्ण की भक्ति करता है। मर्यादा पुष्टि के अनुसार भक्त संसार के समस्त सुखों से अपना हृदय खींच लेता है और श्रीकृष्ण के गुणगान एवं कीर्तन द्वारा उनकी भक्ति करता है। पुष्टि पुष्टि में श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है किन्तु साथ ही भक्त की साधना भी बनी रहती है। शुद्ध पुष्टि में भक्त भगवान् पर पूर्ण आश्रित हो जाता है। भगवान् उस पर अनुग्रह करते हैं। इस अनुग्रह के प्राप्त होने पर भक्त के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति इतनी अनुभूति हो जाती है कि वह भगवान् की लीलाओं से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वल्लभाचार्य जी के सम्प्रदाय में इसी (शुद्ध पुष्टि) को परमोच्च माना गया है।

माया के विषय में आचार्य महाप्रभु के विचारानुसार परमात्मा से आत्मा और प्रकृति के विकास होने में माया का हाथ नहीं। माया जिस प्रकार पारमार्थिक सत्ता को हमारी दृष्टि से छिपा देती है उसी प्रकार उससे मिलाने में भी सहायता देती है। श्री शंकराचार्य के मतानुसार जीवात्मा तथा परमात्मा में भिन्नता माया के कारण दिखाई पड़ती है वास्तव में यह नानात्व मिथ्या है किन्तु आचार्य वल्लभ के अनुसार जीवात्मा की परमात्मा से भिन्नता सत्य है और इस भिन्नता का कारण भी परमात्मा ही है। वल्लभाचार्य ने माया को ब्रह्म की शक्ति कहा है—

"या जगत् कारण भूता भगवच्छक्ति, सा योग माया"।

संक्षेप में महाप्रभु के यही दार्शनिक सिद्धान्त हैं।

जब हम वल्लभाचार्य और सूरदास के सिद्धान्तों को देखते हैं कि सूरदास जी ने आचार्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पूर्णतया पालन नहीं किया। सूरसागर में पुष्टि या मर्यादा शब्द एक बार भी नहीं आता। वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में आविर्भाव, तिरोभाव

जैसे पारिभाषिक शब्द स्थान स्थान पर आये हैं किन्तु सूरसागर में नहीं। जहाँ महाप्रभु ने माया की तुलना "कनक कपिश वस्त्र" से की है वहां सूरदास ने उसे "काली कमरी" माना है। सूरदास ने राधा को कृष्ण की शक्ति का प्रतीक माना है जबकि महाप्रभु के सिद्धान्तों राधा का कोई स्थान नहीं।

आचार्य वल्लभ के दार्शनिक विचारों को जान लेने के बाद अब हम सूरदास जी के दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे।

सूरदास के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। सगुण भी और निर्गुण भी। भगवान स्वयं कहते हैं—

को माता को पिता हमारे।
कब जनमत हमको तुम देख्यो, हँसी लगत सुनि बात हमारे॥

सूरदास भी कहते हैं—

पिता मात इनके नहिं कोई।
आपुहि करता अपुहि हरता निरगुण गये ते रहत हैं जोई।

सूरसागर में कई स्थलों पर विष्णु हरि आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और इनकी वन्दना भी हुई है। उन्होंने राम को भी उतना ही महत्त्व दिया है जितना कि कृष्ण को, किन्तु राम कथा का विस्तार उन्होंने नहीं किया। वस्तुतः विष्णु, हरि, राम ये सब कृष्ण के ही नाम हैं। ये निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूपों के नाम हैं। वास्तव में विष्णु त्रिदेवों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—में से एक देव समझे जाते हैं किंतु सूरदास के विष्णु परब्रह्म ही हैं जो वास्तव में श्रीकृष्ण हैं। सूरदास के श्रीकृष्ण मूलरूप में निर्गुण हैं किन्तु साधारण जनों के लिये उस अगम, अगोचर के रूप की कल्पना करना असम्भ है। इसी से सूरदास ने सगुण उपासना को अपना ध्येय बनाया।

अविगत गति कछु, कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥
... ...

सबविधि अगम विचारहिं तातें सूर सगुण लीला पद गाव ।

यदि हम सूरदासजी के दार्शनिक सिद्धान्तों का विलोकन करें तो प्रतीत होता है कि उन्होंने कृष्ण के दो रूप हमारे सामने रखे हैं—निराकार व साकार—। वास्तव में कृष्ण पूर्व पुरुष और निराकार है, किन्तु भक्तों के लिये वे लीला रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार भक्त की भावना से निर्गुण सगुण हो जाता है।

सूरदासजी ने माया का वर्णन तीन प्रकार से किया है। (१) माया का दार्शनिक रूप (२) माया का संसारिक रूप और (३) माया का राधा रूप। वल्लभाचार्य के समान ही सूरदास भी मानते हैं कि माया ब्रह्म के वश में है। "सो हरि माया जा वश मांहीं"। सूर के मतानुसार माया की सत्ता ब्रह्म से पृथक नहीं। वह प्रलय के बाद उसी के पदों में समा जाती है। वह ब्रह्म का ही अंश है। पर माया का त्रिगुणात्मरूप ही ब्रह्म को ढ़क लेता है। सत्य को भुलावा देकर माया असत् (अविद्या) को उतपन्न करती है। जीवात्मा माया के आवरण को ही सत्य समझती है यही अविद्या है। अतः माया का दूसरा नाम "अविद्या" भी है। सूर ने "सूरदास की सबै अविद्या दूर करो नन्दलाल" कहकर इसी ओर संकेत किया है। किन्तु जहाँ इस अविद्या का कोई आधार नहीं भगवान् उसे लीला मात्र के लिये ओढ़ लेते हैं, वहाँ सूर ने उसे भगवान् की शक्ति का दृढ़ आधार कहा है—

यह कमरी—कमरी करि जानति।
जाके जितने बुद्धि हृदय में सो तितनी करि मानति।

सूर ने इस अविद्या का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

माधव जू मेरी इक गाई।
अब आजु तैं आप आगे दई ले आइये चराई।

माया का दूसरा रूप संसारिक माया है। वह माया का मोह कारी रूप है; जो नारी के सौंदर्य के रूप में विशेषतः विकसित होता है। इससे भक्त की साधना में बाधा उपस्थित होती है। यह

माया का उच्छृङ्खल व उत्पाती रूप है। सूर ने इसको गाय का रूपक दिया है —

साधव जू नेकु हरको गाइ।
निशि वासर यह इत उत भरमति अगद गही नहिं जाई॥

माया की भाँति ही राधा भी कृष्ण की शक्ति है। वस्तुतः राधा माया का अनुग्रह कारी रूप है। जिस प्रकार त्रिदेवों के साथ तीनों शक्तियाँ सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती—का सम्बन्ध है उसी प्रकार राधा का कृष्ण के साथ सम्बन्ध है। राधा कृष्ण के दार्शनिक सम्बन्ध का वर्णन निम्न पद्य में देखिये—

ब्रजहि बसे आपुहिं बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष ऐके करि जानहु, बातनि भेद करायो।
× × × ×
तब नागरि मन हर्ष भई।
नेह पुरातन जानि श्याम को अति आनन्द भई॥
प्रकृति पुरुष नारी मैं वे पति काहे भूलि गई।

इसीलिये सूरदास राधा से भक्ति का वरदान मांगते हैं। इस दार्शनिकता में राधा की कल्पना सूर की अपनी मौलिकता है।

सूर के मत से मुक्ति का साधन केवल भक्ति सच्ची भक्ति है। उन्होंने अपनी रचनाओं में कहीं भी पुष्टि व मर्यादा का नाम नहीं लिया है। पर उनकी भक्ति पद्धति को देख यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उनके ऊपर आचार्यजी का पूरा प्रभाव है। मनुष्य के अन्दर काम, क्रोध आदि अनेक दुर्बल प्रवृत्तियां हैं-ये भगवान् के अनुग्रह से ही दूर हो सकती हैं। सूरकी मुक्ति की कल्पना शुद्धाद्वैत की है। वे साम्राज्य मुक्ति नहीं चाहते। उन्हें तो सान्निध्य मुक्ति चाहिये, जिसमें जीव अपनी सत्ता बनाये रखता है। संक्षेप में यही सूर के दार्शनिक विचार हैं।

प्रश्न १०—सिद्ध कीजिये कि सूरदासजी ने प्रकृति के विशुद्ध रूप का चित्रण किया है।

उत्तर—सूरसागर में उस नटनागर की लीला है, जिसने ब्रज की उन्मुक्त प्रकृति को अपनी क्रीडा भूमि बना रक्खा था। कृष्ण की रङ्गस्थली ही यह ब्रज भूमि है। वे द्वादश वर्ष पर्यन्त ब्रज भूमि के निकट बहती हुई यमुना के पावन पुलिन करील कुञ्ज, कदम्ब और लता वृक्षों के पास खेलते रहे। श्रीकृष्ण का स्मरण होते ही करील और कदम्ब का भी स्मरण हो आता है और यमुना तट के उन भरकों एवं निकुञ्जों को देखते ही वंशीवाला बिहारी मानस-चक्षुओं के सम्मुख नृत्य करने लगता है। श्रीकृष्ण से सम्बद्ध होने के कारण सूरदास का भी ब्रज भूमि और उस की प्रकृति से प्रेम होना आवश्यक था। जहाँ कहीं भी सूर ने प्रकृति का वर्णन किया है ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनकी मनोवृत्ति तन्मय होकर क्षण-क्षण में अभिनव रूप धारण करने वाली उस रूप रमणीयता का दर्शन सुख लूट रही है। गोपियां कहती हैं:—

गोपी कहित धन्य हम नारि।

धनि धनि ग्वाल, धन्य वृन्दावन, धन्य भूमि यह अति सुखकारी।
धन्य दान धनि कान्ह मंगैया, धन्य सूर तृण, द्रुमबन डारी॥

हिन्दी काव्य में प्रकृति का पहला विशद वर्णन सूर काव्य में मिलता है। उसके कई कारण हैं। उन कारणों में पहला कारण यह है कि वह श्रीकृष्ण की लीला भूमि है। श्रीकृष्ण ने वहाँ गौ चरायीं रास रचाई, जिनमें प्रकृति का भी विशेष हाथ है। दूसरे सूरदासजी का जीवन स्वयं भी प्रकृति के निकट था। उनका भी अधिकांश समय यमुनातट और ब्रज भूमि में ही बीता। तीसरा कारण यह है कि बल्लभाचार्य जी ने भी ब्रजभूमि की महत्ता स्थापित करदी थी। उन्होंने भी श्रीनाथ जी की स्थापना के लिये वही स्थान चुना था। लीला नायक श्रीकृष्ण की जन्म भूमि होने के अतिरिक्त वह पुष्टि मार्गी भक्तों की इष्टदेव मूर्ति का निवास स्थान भी था ये ही वे कारण हैं जिनसे सूरने ब्रज-प्रकृति को अपने काव्य में स्थान दिया। एक बात और ध्यान रखने की है कि सूर ने अपने चरित्र

नायक श्रीकृष्ण को अलग रख उसकी लीला भूमि का कहीं भी चित्रण नहीं किया। उनके काव्य में पात्र और ब्रजमण्ल तथा उसकी प्रकृति मिलकर एकात्म होगये हैं।

सूरने प्रकृति वर्णन निम्नलिखित रूपों में किया है:—

(क) प्रकृति का विषयात्मक चित्रण।

(ख) प्रकृति का अलंकृत चित्रण।

(ग) कोमल व भयंकर रूप।

(घ) प्रकृति मानव क्रिया कलाप की पृष्ठ भूमि।

(ङ) अलङ्करों के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का प्रयोग।

(क) प्रकृति का विषयात्मक चित्रण—इस रूप में सूर ने प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अन्य बातों से असम्बद्ध होकर किया है। प्रकृति ऐसे स्थलों में अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट हुई है। निम्न पद्य में प्रभात वर्णन देखिये—

चिरई चुहचुहानी, चन्दकी ज्योति परानी,
रजनी विहानी, प्राची पियरी प्रभान की।
तारका दुरानी, तम घटे, तम चुर बोले,
श्रवण भनक पड़ी ललित के तानकी॥
मृंग मिले भारजा, विछुरी जोरी कोक मिले,
उतरी पनच अब काम के कमान की।
अथवत आये गृह बहुरि उवत भान,
उठौ प्राणनाथ महा जान मणि जानकी॥

निम्नपद में वर्षा का वर्णन देखिये—

माधव मेघ घेरि कित आयो।
घर कों गाय बहोरौ गोहन ग्वालन टेर सुनाये॥
कारी घटा सधूम देखियति अतिगति पवन चलायो।
चारों दिशा चितै किन देखो, दामिनि कोंधा लायो॥

नीचे लिखी पंक्तियों में बसन्त मृतु का अन्य वस्तुओं से कितना असम्बद्ध और अपने शुद्ध रूप में हुआ है—

सरिता शीतल बहत मन्दगति रवि उत्तर दिशि आयो।
अति रस भरी कोकिला बोली विरहिन विरह जगायो॥
द्वादशवन रतनारें देखियत चहुँ दिशि टेसू फूले।
मौरे अँबुआ अस द्रुम वेली मधुकर परिमल भूले॥

प्रकृति का ऐसा शुद्ध वर्णन अन्य कवियों की रचनाओं में प्राप्त नहीं होगा।

(ख) प्रकृति का अलंकृत चित्रण—इस रूप में सूर ने प्राकृतिक दृश्यों को आलंकारिक शैली में प्रकट किया है। प्रभात समय में दही बिलोने की घर्र घर्र ध्वनि मेघ ध्वनि का अनुकरण करती हुई ब्रज के ग्राम ग्राम व घर घर में फैल जाती है। देखिये—

घूमि रहे जिततित दधि मथना, सुनत मेघ ध्वनि लाजैरी॥

निम्न पद में प्रकृति स्वयं मूर्तिमती युवती बन गई है। उत्प्रेक्षा के द्वारा यहाँ उसका युवति रूप प्रकट किया गया है। देखिये—

बसन्त का कितना सुन्दर चित्रण है—

राधे जू आज वरणों बसन्त।
मानहुँ मदन विनोद विहरत नागरी नव कन्त॥
मिलत सन्मुख पटल-पाटल शरत मान जुही।
वेलि प्रथम समाज कारण मेदिनी कच-गुही॥
केतकी कुच कलप कंचन गरे कंचुकि करी।
मालती मद चलित लोचन निरखि मृदु मुख हँसी॥

उत्प्रेक्षा के साथ ही इस में अनुप्रास की छटा भी देखने योग्य है।

(ग) प्रकृति का कोमल व भयंकर रूप—

विश्व का प्रत्येक पदार्थ अपने दो पार्श्व रखता है; वाम व दक्षिण, कोमल व भयङ्कर। प्रकृति के भी यही दोनों रूप हैं। प्रातः काल की ऊसमा और सन्ध्या-कालीन लालिमा म, उसका कोमल रूप प्रकट होता है, किन्तु रात्रि की नीरवता व तमोमयता में एवं मध्याह्न काल के प्रखर ताप में उसका भयंकर रूप दृष्टिगोचर होता है। जन साधारण

मानव को भी प्रकृति के ये दो रूप दिखाई देते हैं तो साधारण मानव से अधिक भावुक कवि का तो कहना ही क्या ? प्रकृति का कोमल-रूप देखिये—

नववल्ली सुन्दर नवतमाल। नव कमल महा नव नब रसाल।
नव पल्लव बहुत सुमन रंग। द्रुमवल्ली तम भयो अनंग॥
भंवरा भंवरी भ्रमत संग। यमुन करति नाना तरंग।

प्रकृति के कोमल वर्णन में वर्षा का भी वर्णन है। देखिये—

गगन गरजि घहराइ जुरी घटा कारी।
पवन झक झोर चपला चमकि चहूँ ओर॥
सुवन तन चितै नन्द डरत भारी।
कह्यो वृषभानु को कुँवरि सों बोलिकै॥
राधिका कान्ह घर लिये जारी।

× × × ×

ऐसे बादर सजल, करत अतिमहाबल,
चलत घहरात करि अंध काला।
चकित भये नन्द, सब महा चकित भये,
चकित नर नारि हरि करत ख्याला॥
घटा घनघोर, घहरात, आरात,
दररात, सररात ब्रज लोग डरपें।
तड़ित आघात तररात, उतपात,
सुनि नारि सकुचित तनु प्राण आपें॥

(घ) प्रकृति मानव क्रिया कलाप की पृष्ठ भूमि—इस विषय में भी प्रकृति के दो रूप होते हैं। एक में वह मानव-क्रीड़ा के लिये परिस्थिति को सजाती है तथा दूसरे में मानव क्रीड़ा में भाग लेती है। इन दोनों रूपों में ही वह मानव की सहयोगिनी होती है। प्रकृति दूसरे रूप में वेदना-व्यथित हृदय की अनुभूति होती है। पृष्ठ भूमि के निर्माण की बात निम्न पद में देखिये—

आज निशि शोभित शरत सुहाई।
शीतल मंद सुगन्ध पवन बहै रोम-रोम सुखदाई॥

यमुना पुलिन पुनीत परस रुचि रचि मंडली बनाई।
राधा वाम अंग पर कर धरि मध्यहि कुँवर कन्हाई ॥

निम्न पद में प्रकृति मानव से होड़ करती हुई दिखाई देती हैं—

अद्भुत कौतुक देखि सखीरी, श्री वृन्दावन में दौड़ पड़ी।
उत धन उदित सहित सौदामिनी, इतहि मुदित राधिका हरी री॥
उत बग पाँति शोभित इत सुन्दर धाम विलास सुदेश खरी री।
वहां गर्ज धन इहाँ ध्वनि मुरली जलधर इत उत अमृत भरी री॥
इतहि इन्द्रधनु उत बन माला अति विचित्र हरि कंठ धरी री।

(ङ) अलङ्कारों के रूप में प्रकृति का चित्रण—

अलंकारों के रूप में प्रकृति का प्रयोग सूर सागर में अनेक स्थलों पर हुआ है। सूर ने प्राय उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति से ही भावों का व्यञ्जन किया है। प्रत्यक्ष रूपसे इनसे प्राकृतिक दृश्यों की छटा भी अंकित होगई है। निम्न पद में रूपक अलंकार द्वारा दृष्टि के बहाने सरिता का सम्पूर्ण दृश्य उपस्थित किया गया है —

चितवन रोकेहू न रही।
श्याम सुन्दर सिन्धु सन्मुख सरित उमंग बही॥
लोल लहर कटाच्छ घूँघट पट करार ढ़ही।
थके पल पथि नाव धीरज परति नहि न गही।

उक्त सभी उदाहरणों को देख हम कह सकते हैं कि सूर ने प्रकृति के शुद्ध रूप को ही ग्रहण किया है।

प्रश्न ११—सूरकी रचनाओं के मूल स्रोतों का निर्देश कीजिये-

उत्तरः— महा कवि सूरदास आचार्य वल्लभ के अनन्य शिष्य एवं प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना की सहज शक्ति से ही लिखा है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार आचार्य जी ने उन्हें एकही रात में सारे भागवत की अनुक्रमणिका कहकर "लीलाभेद" बताया था। और तभी से उन्होंने भक्ति के नव-पथ को अपनाकर कृष्ण काव्य को

अमर बना दिया। यह तो हमने कह ही दिया है सूरदास आचार्य वल्लभ के शिष्य थे। उनकी कृपा से ही उन्होंने सूर सागर की रचना की। उस पर श्रीमद् भागवत का भी प्रभाव है। कवि ने स्वयं कहा है—

श्री मुख चारि श्लोक दिये ब्रह्मा को समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सों कहे नारद व्यास सुनाई॥
व्यास कहे शुकदेव सों द्वादश स्कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भासा करिगाइ॥

× × ×

जैसे शुक को व्यास पढ़ायो, सूरदास तैसेकहि गायो।
सूर कह्यो भगवत अनुसार,··· ··· ··· ॥

इन कथनों के होते हुए भी सूर सागर को भागवत का अविकल अनुवाद नहीं कहा जा सकता उसमें भागवत के दश स्कन्ध की कथा की ही प्रधानता है, इतना होते हुए भी वह स्वतंत्र रचना है। बालक कृष्ण व बालिका राधा के साथ खेलने के प्रसंग व भ्रमण गीत की व्यंग्यमयी उक्तियां भागवत में ढूंढने पर भी नहीं मिलेंगी। निर्गुण व सगुण का झमेला भी भागवत में नहीं दिखाई देता जो सूरसागर के भ्रमर गीत का प्रधान अंश है। इस के अतिरिक्त भागवत सर्ग, निसर्ग आदि दश विषयों का वर्णन करता हुआ भक्ति के प्रमुख स्थान देता है, पर सूरसागर में मुख्य रूप से राधा कृष्ण लीला को ही प्रधानता दी गई है। अतः सूरसागर भागवत का अक्षरसः अनुवाद नहीं। कलेवर की दृष्टि से भी कुल ४५७२ पदों में दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में ३६३६ पद हैं। अन्य स्कन्धों में, ४, ८, १२, ११२, १७२ आदि ही हैं। दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में कृष्णलीला का दृष्टिकोण भी भागवत से भिन्न ही है। भगवत में वह परब्रह्म व भूभार हरने वाले हैं यहाँ कृष्ण का लीला रूप के है पर उस लीलारूप के पीछे भी उनका ब्रह्मत्त्व छिपा है। इतना होते हुए भी हमें यह कहना ही पड़ेगा कि सूरसागर के कृष्ण भागवत के ही कृष्ण हैं महाभारत की नीति विशारद या गीता के योगेश्वर नहीं। सूरसागर के दशम स्कन्ध में भी

भ्रमर गीत आदि के प्रसंग पर कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा क परिचय दिया है। भागवत के अतिरिक्त सूरदासजी ने ब्रह्माण्ड पुराण व वामन पुराण से भी कथायें ली हैं। ब्रह्माण्ड पुराण का उल्ले सारावली तथा वामन पुराण का उल्लेख दशम स्कन्ध में है।

श्री सूरदासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अनुयाय थे इस प्रकार इनकी दार्शनिक भावना भी शुद्धा द्वैत मत से प्रभावि है। शंकराचार्य के अद्वैत मत के विरोध में ही रामानुजाचार्य विष्णु स्वामी, मध्व, तथा निबंकचार्य ने सगुण भक्ति की प्रतिष्ठ की थी। इन तीनों महात्माओं की भक्ति में भी रूपतः कुछ भेद है सूरदास पर विष्णु स्वामी का प्रभाव इस रूप में अधिक दिखाई पड़त है। भगवान् शंकराचार्य ने ब्रह्म को निराकार एवं माया को साका सा बताया था किन्तु विष्णु इस मिथ्या माया को मानते ही नहीं ब्रह्म माया के कारण नहीं प्रत्युत स्वतः ही साकार है। ब्रह्म से ह त्रिगुणात्मक सृष्टि होती है, ब्रह्म व उसके रचित संसार में को भेद नहीं। भगवान् तो विश्व में अपनी शाश्वत लीला में लीन रह हैं। सूर ने भी प्रधानतया: इसी रूप को अपनाया। निम्बार्क द्वैताद्वैत का भी पर्याप्त प्रभाव सूरपर है। निम्बार्क मतानुयाय चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति की सुरसरि प्रवाहित की। इनके मतानुसा प्रकृति व जीव उसी ब्रह्म के गुण हैं। आनंद उसका मूल है। ये राध में ही दिव्य प्रेमानुभूति करते थे। निम्बार्काचार्य ने कृष्ण भक्ति में राध की प्रतिष्ठा विशेष रूप से की। उन्होंने राधा को कृष्ण की शाश्व पत्नी के रूप में स्वीकार किया। महात्मा सूरदास जी ने भी राधा क स्वकीया के रूप में ही चित्रित किया।

श्रीमत् शंकराचार्य के मायावाद का प्रभाव भी सूर पर है। यद्यपि शुद्धाद्वैती होने से माया का स्थान उसमें नहीं होना चाहिये थ फिर भी उन्होंने "माधव जू मेरी इक गाई" या "माधव जूनेकु हठक गाई" आदि पदों में माया के अनेक स्वरूपों का कथन किया है।

कृष्ण काव्य में सरलता, कोमलकान्त पदावली एवं गयेता

कारण कविवर जयदेव विशेष प्रसिद्ध हुए। उनका गीत-गोविन्द का काव्य-तत्त्व सब का आकर्षण केन्द्र रहा। सूरदासजी में भी गीत-पद्धति, शब्द चयन, भावलावण्य आदि अनेक स्थलों पर गीत गोविन्द का प्रभाव है, पर यह प्रभाव ही है, अनुकरण नहीं। साहित्य-लहरी में भी काव्य शास्त्रीय दृष्टि से जयदेव की ही पद्धति के अनुसार है। सारावली भी एक स्वतंत्र रचना है। सूरसागर एवं सारावली में कुछ मौलिक एवं सैद्धान्तिक भेद भी है।

अन्त में सार रूप में यही कहा जा सकता है कि, सूरदासजी ने दार्शनिक व काव्य शास्त्रों के मत का अनुसरण तो किया किन्तु वे उसके पचड़े में अधिक नहीं पड़े, उन्हें तो भगवान के साकार रूप का ही गान करना था। उन्होंने कृष्णलीला का स्मरण तथा वर्णन अपनी भक्ति भावना के ही अनुकूल किया। उन्हें किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन की भी आवश्यकता इसके लिये प्रतीत न हुई। वस्तुतः इनकी रचनाओं के मूलस्रोत में इनकी प्रतिभा ही अधिक थी, वाह्य आधार कम।

प्रश्न १२—सूरदास की भक्ति पद्धति का सामान्य परिचय दीजिये—

उत्तर—सूर काव्य के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं, भक्ति पक्ष व काव्य पक्ष जहाँ केवल भक्ति भावना ग्रहण करने की बात है। अव्य-भिचारिणी भक्ति है, वहाँ काव्य किस कोटि का है यह प्रश्न ही नहीं उठता; किन्तु उच्चकोटि काव्य निश्चित ही भक्ति भावना को अधिक ऊँची भूमि पर प्रतिष्ठित करने में सहायक होगा। यहाँ हम सूरदास जी की भक्ति का आदर्श देखेंगे।

सूरदास की भक्ति के आलम्बन श्रीकृष्ण हैं, स्वयं सूरदास जी उस भक्ति के आश्रय हैं, कृष्ण के रूप-गुण लीलाएँ आदि उद्दीपन विभाव हैं। सूर के कृष्ण अविगत हैं, मानववाणी से अगम हैं वे परब्रह्म हैं। उनके कृष्ण गोपियों से स्वयं कहते हैं—

को माता को पिता हमारे।

कब जनमत हमको तुम देख्यो, हँसी लगत सुनि बात तुम्हारे।

किन्तु सूरदासजी जानते हैं कि निर्गुण, अनादि, अनन्त से भक्ति सम्बन्ध जोड़ा नहीं जा सकता। वे गोपियों से कहलाते हैं—

कान्ह कहाँ की बात चलावत।

स्वर्ग पाताल एक करि राखौ युवतिन को कहि काह बतावत।

गोपियों की भांति ही सूरदास जी भी परब्रह्म श्रीकृष्ण की अनुमोदनता स्वीकार कर लेते हैं और कहते हैं—

अविगत-गत कछु कहत न आवै।

ज्यों गूँगेहि मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै।

परम स्वादु सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै॥

मन-बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै।

रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिन निरालम्ब कित धावै।

सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन लीला पद गावै॥

अतः सूरदास जी ने परब्रह्म कृष्ण को पहिचानते हुए भी उनके सगुण रूप के रहस्यात्मक स्वरूप की कल्पना से परिचालित हैं। भगवान् भक्त के लिये ही अवतार धारण करते हैं। यही लीला का महत्त्व है—

भक्त हेतु अवतार धरयो।

धर्म कर्म के वश में नाहीं योग जग्य मन में न करो।

भक्त और भगवान् का तो प्रेम व भाव का नाता है। भक्त अनन्य भाव से भगवान् को प्रेम करता है। उनकी भक्ति अनन्य कोटि की है। उन्होंने कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को स्वयं स्वीकार किया है।

मेरो मन अनंत कहाँ सुख पावै।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै।

....

सूरदास प्रभु काम धेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

× × ×

श्याम बलराम को सदा गाऊँ।
श्याम बलराम बिनु दूसरे देव को स्वप्न हूँ माँहि नहिं हृदय ल्याऊँ।

इस भक्ति की गहराई का अनुमान सूर के निम्न पद से ही हो जाता है—

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गये कैसे जन जीवत ज्यों पानी बिन प्राण।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके पदों में भक्ति की अनन्यता एक दम-स्पष्ट है; किन्तु फिर भी यदि हमें शास्त्रीय पद्धति से देखना है तो उसे हम विनय व सख्य दो नामों से पुकारेंगे।

ऊपर हमने जो भक्त का भगवान् के प्रति दृढ़ प्रेम दिखाया है, उसका रूप है आत्म समर्पण और शरणागति भाव—

जौ हम भले बुरे तो तेरे।
तुम्हें हमारी लाज बड़ाई विनति सुनु प्रभु मेरे।
सब तजि तुम सरनागत आयो, दृढ़ करि चरन गहे रे॥

× × ×

तुम तजि और कौन पै जाऊँ।
काके द्वार जाइ सिर नाऊँ पर हथ कहाँ बिकाऊँ॥

किन्तु भक्त की ओर से चेष्टा करने से ही सब कुछ नहीं हो जाता। इष्टदेव की भी कृपा तो चाहिये। सूरदास इसी कृपा के अकांक्षी हैं। यहाँ इसी कृपा को "पुष्टि" कहते हैं। जिससे भक्तों का पोषण होता है। सूरदास ने अपने विनय के पदों में भगवान् की इस अनुकम्पा व भक्त-वत्सलता का गुण-गान किया है। इस अनुकम्पा में विश्वास के बिना भक्ति एक पद भी आगे नहीं बढ़ सकती।

परन्तु साधना के अन्त में भक्त मुक्ति चाहता है? नहीं! वह तो केवल भक्त की ही याचना भगवान् से करता है—

अपनी भक्ति देहु भगवान्।
कोटि लालच जो दिखावहुँ नाहिमैं रुचि आन॥

इस भक्ति के कई साधन हैं। जिनमें नाम संकीर्तन प्रथम कहा भी है—"कलौ केशव कीर्तनात्"। सूरदास ने इस भाव लेकर कहा है—

जो तू राम नाम धन धरतौ।
अब कौ जनम, आगिलौ तेरो, दोऊ जनम सुधरतो।

संकीर्तन साधन के अतिरिक्त भक्ति के साधन निम्न प्रकार हैं—(२) गुरु भक्ति, (३) लीलागान (४) नित्य और नैमित्तिक (५) भगवान् के रूप का ध्यान।

पुष्टिमार्ग में गुरू व ब्रह्म का एक ही स्थान है। गुरु ही का सम्बन्ध ब्रह्म से कराता है। भक्त गुरु को ही कृष्ण मान आत्म समर्पण कर देता है। जब सूर का अन्त समय था उस स श्री चतुर्भुज दास जी ने कहा कि आपने और तो सब गाया कि महाप्रभु के यश का वर्णन नहीं किया। उस समय उन्होंने य उत्तर दिया कि मैंने तो सारा ही आचार्य महाप्रभु का गुण गा है। जो उन्हें (कृष्ण से) विलग देखता तो विलग ही गाता सूरदासजी ने प्रस्तुत पद गाया—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्री वल्लभ नखचन्द्र छटा बिनु सब जग माँहि अँधेरो॥

लीला गान के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सम सूरसागर ही लीला गान है। भगवान् के बाल व किशोर रूप ध्यान भी सूरसागर में सैकड़ों परिस्थितियों में देखा गया है। उ हरण स्वरूप देखिये—

सखीरी नन्द नन्दन देखु।
धूलि धूसरि जटा जूटलि हरि किये हर भेषु॥
नील पाट पुरोइ मणिगण फणिज धोखे जाई।
खुन खुना कर हँसत मोहन नचत डौस बजाई॥
× × × ×

सखी री सुन्दरता को रंग।
छिन छिन माँह परत छबि और कमल नयन के अंग॥
श्याम सुभग के ऊपर वारौं आली कोर अनंग।
सूरदास कछु कहत न आवै गिर भई मति पंगु॥

भगवान् के प्रति भक्त की रति होती है। वह पांच प्रकार की—शांति, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा, कान्ता या मधुरा। इनमें शान्ति, भक्ति का रूप शीत, प्रीति का दास्य, प्रेम का सख्य, अनुकम्पा का वात्सल्य एवं कान्ता या मधुरा का मधुर है। सूरदास की भक्ति में सभी प्रकार की भक्ति के उदाहरण पर्याप्त मिलते हैं। हम आरम्भ भी कह चुके हैं कि शास्त्रीय पद्धति से देखे तो इन की भक्ति के ही रूप हैं विनय एवं सख्य। उक्त पांचों प्रकार की भक्तियों कुछ का समावेश विनय में एवं कुछ का सख्य में हो जाता है।

(१) सर्व प्रथम शान्त भक्ति आती है, जिसमें वैराग्य की प्रधानता किन्तु यह वैराग्य संसार के प्रति ही रहेगा इष्टदेव के प्रति नहीं। तः इसका कोई मूल्य भी नहीं। विनय के पदों में ही ऐसे दाहरण हैं। देखिये—

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे
सुनि मन, कहौं पुकारि तोसों हौं, भजि गोपालहि मेरे।

(२) महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व, जब कि वे गऊघाट रहते थे इसी दास्य भाव के पद बनाया करते थे। दास्य भक्ति विनय व दैन्य प्रकाशन की प्रधानता है। दैन्य का भाव देखिये—

प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ।
और पतित सब द्यौस चारि को, हौं तो जनमत ही कौ।

निम्न पद में दास्य भाव देखिये—

रे मन कृस्न नाम कहि लीजै।
गुरु के वचन अटल करि मानों साधु समागम कीजै।

सूर की यह दास्य भावना भगवान् तक पहुँचने का साधन

मात्र है। भगवान् की भक्ति पाने पर तो उन्हें पाप का किंचित
भय नहीं रह जाता।

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै हम हीं कै तुम ही माधव आपुन भरोसे लरि हौं।
× × ×
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हें बिरद बिनु करिहौं॥

(३) सख्य भक्ति—पुष्टि मार्ग में भगवत्लीला का महत्त्वपूर्ण स्थ
था। वल्लभाचार्य को दैन्य प्रधान भक्ति प्रिय नहीं थी यह तो उन
सूर के मिलने के समय से ही स्पष्ट है। उनकी भक्ति में लीला कीर्त
आदि को विशेष स्थान था, वे सखा भाव से ही कृष्ण का सान्नि
प्राप्त करते थे। इसलिये सूरसागर में भी सखा भाव की भक्ति के
भरे पड़े हैं।

सख्य-भक्ति सूरसागर में दो रूपों में प्रकट हुई है। एक गा
और ग्वालों के प्रसंग में। इसी में प्रेम अनुकम्पा व मधुरा
सम्मिश्रण है। दूसरे, सारा ही सूर सागर सखा भाव से गा
गया है। भक्त भगवान् की प्रत्येक लीला में—चाहे वह गोप्य
क्यों न हो विश्वस्त मित्र की भाँति भाग लेता है। यही कारण
कि इस भक्ति में उन्हें औचित्य की सीमा लाँघने का भी ध्यान न
रहता, लज्जा की तो बात ही क्या? एक उदाहरण देखिये—

नीवी ललित गही यदुराई।
जबहिं सरोज धरो श्रीफल पर तब यशुमति तँह आई॥
× × × ×
ऐसे जनि बोलहु नन्द लाला।
छांड़ि देहु अंचरा मेरो नीके जानत हौं श्री बाला॥
बार मैं तुम्हें कहति हौं परिहैं बहुत जंजाला।
जोवन रूप देखि ललचाने अवहिं ते ए ख्याला।
तरुनाई तन आवन दीजै कित जिय होत बिहाला॥
सूरदास उर ते कर टारहु टूटै मोतीन माला॥

आचार्य वल्लभजी ने वात्सल्य भाव को ही एकमात्र उपादेय माना था और वे बालकृष्ण के उपासक थे; किन्तु पुष्टिमार्ग के कवियों ने सख्य और मधुर भाव को ही अपनाया। माधुर्यभाव को तो विशेष रूप से ग्रहण किया है। मधुर भाव की विशेषताओं के विषय में हम यह कह सकते हैं कि (१) भगवान् व भक्त का इतना नैकट्य होता है कि जितना पति-पत्नी का। भक्ति की सर्वोच्च दशा में वह परकीया भाव का अनुभव करने लगता है—

जब ते सुन्दर बदन निहारयो
ता दिन ते मधुकर मन अटक्यों बहुत करी निकरै न निकारयौ।
मात पिता पति बन्धु सजन जन तिनहूँ को कहिबे सिर धारयौ।
रही न लोक लाज मुख निरखत दुसह क्रोध फीको करि डारयौ।

(२) कृष्ण भक्त मन के संयम के स्थान पर मन को कृष्ण की ओर उन्मुख करता है—

मन तोसों किती कही समुझाई।
नन्द नन्दन के चरण कमल भजि तजि पाखंड चतुराई।

अतः मधुर भाव के उपासकों के लिये इन्द्रियों के नियमन का प्रश्न ही नहीं रहता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर सागर में नवधा-भक्ति के अंगों की पूर्णतः पुष्टि है। इन प्रसंगों के वर्णन में ही उनकी भक्ति भी सन्निहित होगई है।

प्रश्न १३—"सूर साहित्य में रस राज (शृङ्गार) के प्रत्येक अंग को स्पर्श किया गया हैं" इन उक्ति की समीक्षा कीजिये।

उत्तर—यदि भाषा काव्य का कलेवर है, तो रसपूर्ण कथन काव्य की आत्मा है। काव्य शास्त्र के आचार्यों ने सरस काव्य को ही वास्तविक काव्य बतलाया है। जिस काव्य में रस नहीं, वह शब्दाडंबर मात्र है। सूरदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र रसपूर्ण कथन प्रचुर परिमाण में मिलते हैं।

रसों में शृङ्गार-रस प्रमुख है, इसे रस-राज के नाम से व्यवहृत किया जाता है, जिसका पूर्ण परिपाक सूर के काव्य में हुआ है। शृङ्गार-रस के संयोग एवं विप्रलम्भ दो पक्ष होते हैं। सूरदास ने दोनों प्रकार के शृङ्गार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भाव लोक में विचरने लगता है। आचार्यों ने शृङ्गारिक कथन के जितने अंग बताये हैं, सूरदास के काव्य में उनका पूर्ण रूपेण समावेश है। हिन्दी साहित्य में शृङ्गार का रस राजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया है तो वह सूरदास जी ने।

उनकी उमड़ती हुई वाग्धारा उदाहरण रचने वाले कवियों के समान गिनाये हुए संचारियों से बँध कर चलने वाली न थी। यदि हम केवल सूर के विप्रलम्भ शृङ्गार तथा भ्रमर गीत को ही देखलें तो न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशायें ऐसी मिलेंगी, जिनके नाम करण तक नहीं हुए हैं। इसी को कवि की पहुँच कहा जाता है "जहां न जाय रवि वहां जाय कवि" यह उक्ति यहाँ चरितार्थ होती है। सूरदास जी ने जीवन के परिमित क्षेत्र (शृङ्गार व वात्सल्य) पर ही अपनी कलम चलाई है, इन्हीं में उनकी पहुँच इतनी है जितनी अन्य किसी कवि की नहीं—तुलसीदास की भी नहीं—बात यह है कि सूर को गीति काव्य की जो परम्परा जयदेव व विद्यापति से मिली थी, वह शृङ्गार की ही थी। दूसरी बात उपासना के स्वरूप की है। वल्लभाचार्य ने भक्ति मार्ग में भगवान् का प्रेममय स्वरूप प्रतिष्ठित करके उसके आकर्षण द्वारा "सायुज्य मुक्ति" का मार्ग दिखाया था। प्रेम भाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। आचार्य वल्लभ के अनुयायी कृष्ण भक्त कवि भी इसी बात को लेकर चले। उक्त प्रेम तत्त्व की पुष्टि में ही सूर की वाणी मुख्यत: प्रयुक्त हुई है।

शृङ्गार रस गोपियों एवं कृष्ण, तथा राधा-कृष्ण को लेकर अभिव्यक्त हुआ है गोपियों और कृष्ण के प्रेम प्रसंग में अलौकिकता

का समावेश हुआ है राधा कृष्ण का प्रेम पूर्ण रूप से मानवीय है, उसमें अलौकिकता को अधिक स्थान नहीं मिला। पीछे हम सूर के वात्सल्य का चित्रण कर चुके हैं। वृन्दावन के उसी हास-परिहास एवं सुखमय जीवन के बीच गोपियों के प्रेम का उदय होता है। गोपियां कृष्ण के दिन प्रति दिन खिलते हुए सौन्दर्य और मनोहर चेष्टाओं को देख मुग्ध होती चली जाती हैं, उनके मन में विकार उत्पन्न होने लगता है—

मेरे हियरे माझ लगे, मनमोहन, ले गये मन चोरी।
अबहिं इहि मारग ह्वै निकसे छवि निरखत तृन तोरी॥

सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा व साश्चर्य दोनों का योग है। बाल-क्रीडा के सखा-सखी आगे चलकर यौवन-क्रीडा के सखा-सखी होजाते हैं। गोपियों ने तो उद्धव से स्पष्ट शब्दों में कहा "लरिकाई को प्रेम कहौ, अलि, कैसे छूटै ?" गोपियों के प्रेम का विकास अस्वाभाविक रूप से नहीं प्राकृतिक रूप से हुआ है। रूप का आकर्षण भी बाल्यावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। राधा व कृष्ण के मिलन में इसी भाव को देखिये—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये श्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदन की खौरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विशाल भाल दिये रो री।
सूर श्याम देखत ही रीझै, नैन नैन-मिलि परी ठगोरी॥

और राधा को देख कृष्ण पूछते हैं—

बूझत श्याम कौन तू, गोरी।
"कहां रहति, काकी तू बेटी? देखी नाहिं कहूँ ब्रज खोरी"।
"काहे को हम ब्रज तन आवति? खेलति रहति आपनी पौरी॥
सुनति रहत श्रवन नँद ढोटा करत रहत माखन दधि चोरी"।
"तुम्हरो कहा हम चोरि लै हैं? खेलन चलौ संग मिलिजोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि बातन भुरइ रधिका मोरी॥"

इस खेल खेल में ही राधा-कृष्ण के हृदय में प्रेमांकुर पैदा होगया।

हम पहले कह चुके हैं कि शृङ्गार और वात्सल्य के क्षेत्र में सूर की समता को और कोई कवि नहीं पहुंच सका। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। बृन्दावन में कृष्ण व गोपियों का सम्पूर्ण जीवन क्रीड़ामय है तथा वह सम्पूर्ण क्रीड़ा संयोग पक्ष है। संयोगावस्था में राधा ने सबसे अधिक आनन्द पाया है। अक्रूर के साथ कृष्ण जब मथुरा चले जाते हैं, तो गोपियों की विरह दशा का विस्तृत चित्रण किया है। राधा भी उनमें एक हैं पर उनका प्रेम अन्य गोपियों की अपेक्षा गम्भीर है। वह अन्य गोपियों की भाँति कृष्ण को दोष नहीं देना चाहतीं, वह अपने को ही दोषी मान लेती हैं, तथा अपने व्यक्तित्व को कृष्ण के साथ की हुई लीलाओं में केन्द्रित कर लेती हैं। भाव यह है कि विरहिणी गोपियों व राधा में भेद है। भ्रमर गीत के प्रसंग में राधा को चित्रपट से हटाकर सूर ने यह भी व्यञ्जित कर दिया है कि उनका प्रेम कृष्ण के अधिक निकट है और वह अन्य गोपियों के प्रेम से अधिक गम्भीर है। अब हम कुछ संयोग व वियोग शृङ्गार का चित्रण करेंगे।

सूर का संयोग-वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती हुई धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई देता। हम पहले राधाकृष्ण का परस्पर परिचय दे चुके हैं। इसके बाद दोनों एक दूसरे के घर आने जाने लगे हैं। अब तो नित्य ही प्रेम लीलाएं होती हैं।

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाड़ी।

× × ×

तुम पै कौन दुहावै-गैया ?
इत चितवत उत धार चलावत, एहि सिखयो है मैया ?

राधा के बार-बार कृष्ण के घर आने पर यशोदा उसे कहती हैं कि तू यहाँ क्यों आती है? राधा का उत्तर देखिये—

बार-बार तू ह्याँ जनि आवै।
"मैं कहा करौं सुतहिं नहिं बरजति, घरतें मोहि बुलावै।
मोसों कहत तोहि बिनु देखे रहत न मेरो प्रान।
छोह लगत मोको सुनि बानी, महरि तिहारी आन।"

कितनी सीधी सादी और भोली व्यंजना है इसमें। सूर का सारा ही संयोग वर्णन प्रेम चर्चा है, रासलीला, दानलीला, मानलीला आदि सब उसके अंतर्भूत हैं। संयोग के एक-दो उदाहरण और देखिये—

नन्द कुमार कहा यह कीनो।
बूझत तुमहि कहौ धौं हमसों।
दान कियो कि मन हरिलीनो॥

× × ×

विहरत हैं यमुना जल श्याम।
राजत हैं दोहु बाँहा जोरी दम्पति अरु ब्रज बाम।
कोउ ठाढ़ी जल जानु जंघ लौं कोउ कटि हृदय ग्रीव।
यह सुख बरणि सकै ऐसे को सुन्दरता को सींव॥

कृष्ण की मुरली पर कही हुई उक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं सूर ने इन पंक्तियों में सम्बन्ध भावना का अच्छा परिचय दिया है। कृष्ण के प्रेम ने गोपियों में इतनी सजीवता भर दी है कि कृष्ण तो क्या, कृष्ण की मुरली तक से छेड़-छाड़ करने का उनका जी चाहता है। देखिये—

माई री! मुरली अति गर्व काहू बदति नहिं आज।
हरि के मुख कमल देखु पायो सुखराज।

× × ×

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन, री सखी! जदपि नन्दनन्दहिं नाना भाँति नचावति।

यह तो हुई संयोग पथ की बात। वियोग पक्ष के अन्तर्गत भी सूर ने अनेक दशाओं का वर्णन किया है। उद्धव के ब्रज में आने से पूर्ण वियोग चित्रण में विरह की एकादश दशाओं का चित्रण हुआ है। बाद के प्रसंग (भ्रमरगीत) में तो प्रेम की अनन्य तन्मयता ही सर्वत्र प्रतिध्वनित होती है।

कृष्ण के चले जाने पर सायं, प्रभात तो उसी प्रकार होते हैं, पर "सदगोपाल बिना या तन की सबै बात बदली।" ब्रज में पहले सायंकाल को जो दृश्य देखने में आता था, वह अब नहीं दिखाई देता; पर मन से उसकी "स्मृति" नहीं जाती—

एहि बिरियाँ बन ते ब्रज आवते।
दूरहि ते वह बेनु अधर धरि बारंबार बजावते॥

आनन्द देने वाले पदार्थ भी वियोग में दुःख के ही पोसक होते हैं—

बिनु गोपाल बैरिन भइं कुँजैं।
तब ये लता लगति अति शीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुजैं॥

× × × ×

पवन, पानि, घनसार, सँजीवनी दधि सुत किरन भानु भईं भुँजैं॥

अपने इसी उजड़े और नीरस जीवन के मेल न होने के कारण वृन्दावन के हरे-भरे कुँजों को भी कोसती हैं—

मधुवन ! तुम कत रहत हरे ?
विरह वियोग श्यामसुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे ?
तुम हौ निर्लज लाज नहिं तुमको फिर-सिर पुहुप धरे।
ससा स्यार और बन के पखेरू धिक्-धिक सबन करे॥
कौन काज ठाड़े रहे बनमें काहे न उकठि परे ?

इसी प्रकार कृष्ण के बिना कालीरात सर्पिणीसी लगती है—

पिय बिनु साँपिन काली रात।
कबहुँ जामिनी होति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात॥

कृष्ण के बिना आँखों में आँसुओं की झड़ियाँ लगी हैं—

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै जबतें स्याम सिधारे ।
दृग अंजन लागत नहिं कबहू उर कपोल भये कारे ।
कंचुकि नहिं सूखति सजनी । उर बिच बहत पनारे ॥

कभी बादल अपने प्रकृत रूप में बरसने आते हैं तो वे उन्हें कृष्ण से अधिक दयालु दीखते हैं—

बरु ये बदराऊ बरसन आये ।
अपनी अवधि जानि नन्दनन्दन, गरजि गगन घन छाये ।

मूर्छा का एक उदाहरण देखिये—

जबहिं कह्यो ये श्याम नहीं ।
परीं मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जँह रहीं सु तहीं ।

कहाँ तक वर्णन करें ? अन्त में यही कह सकते हैं कि सूर ने शृङ्गार की किसी भी दशा को छोड़ा नहीं । सचमुच सूर "सूर" हैं ॥

प्रश्न १४—काव्य कला की दृष्टि से सूर काव्य की समीक्षा कीजिये । सूरदास के काव्य की या विशेषताओं का उल्लेख कीजिये—

उत्तर—सूरदास यद्यपि अपने काव्य महत्त्व के कारण हिन्दी कवियों के मुकुट मणि माने जाते हैं तब भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने काव्य की रचना कवि के दृष्टिकोण से नहीं की। उनके समग्र काव्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वे पहले भक्त हैं बाद में कवि । अपने इष्ट की भक्ति में तल्लीन होकर जो कुछ उन्होंने गाया है, वह भक्ति साहित्य की सर्वोत्तम कृति है, किन्तु साथ ही काव्य कला के भी समस्त गुण उस में विद्यमान हैं । इसके कारण उनके काव्य का महत्त्व और भी अधिक होगया है । सूर ने अपने काव्य के विषय का साक्षात्कार किया था, वे उसके अत्यन्त निकट थे । सूर की कला के बाह्य और आन्तरिक दोनों रूप पुष्ट हैं ।

हिन्दी कवियों में दो प्रकार के कवि पाये जाते हैं। इनको भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष के रूप में विभाजित किया जाता है। साधारणतया भक्तिकाल के कवि भाव-पक्ष तथा रीति काल के कवि कलापक्ष के कवि कहे जाते हैं। सूरदास यद्यपि भाव-पक्ष के कवि हैं तथापि उनकी भाव रूपी भागीरथ में काल रूपी कालिन्दी भी आ मिली है। इस संगम के फल स्वरूप उनका काव्य अतीव आनन्ददायक हो गया है यहाँ हम सूर की कला की विवेचना करेंगे। साधारणतः हम सूर के समस्त पदों को अधोलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

क—विनय के पद दास्य व आत्म-समर्पण।

ख—कृष्ण की मधुरा-भक्ति।

ग—कृष्ण की बाल लीला का प्रसंग।

घ—राधा-कृष्ण का प्रेम प्रसंग।

ङ—कूट पद, रस-निरूपण, नायका भेद व अलंकारों को स्पष्ट करने वाले पद।

सूर के बाह्यांग में वैयक्तिकता, सरलता, और सत्यता तीन आवश्यक गुण मिलते हैं। इन गुणों ने उनके भावपक्ष को और भी पुष्ट व प्रभावशाली बनाया है। उन्होंने सूर साहित्य में आत्मीयता की उत्पत्ति की है।

सूर के काव्य का बाह्य रूप—कलापक्ष का विवेचन हम रस से ही आरम्भ करेंगे। वैसे तो सूर सागर में प्रायः सभी कोमल रसों का विस्तार से वर्णन किया है एवं कठोर रसों का संक्षेप में; पर विनय के पदों में शांत रस एवं शेष में वात्सल्य एवं शृङ्गार का प्राधान्य है। सूर वस्तुतः शांत, वात्सल्य एवं शृङ्गार के ही कवि हैं। शेष रह जाते हैं वीर, रौद्र, भयानक, करुण, वीभत्स। एक बात ध्यान देने की है कि सूर का काव्य ही ऐसे ढँग का है कि उस में भयानक व वीभत्स जैसे रसों के लिये स्थान ही नहीं हो सकता। वीर और रौद्र भी केवल प्रासंगिक कथा के साथ ही आ सकते थे। उन्हें यह रस

अच्छे भी नहीं लगते थे। वे तो केवल मधुर भाव के भक्त थे। वीर-रस का वर्णन इन्द्र-गर्व-हरण और कंस-चाणूर वध आदि प्रसंगों में है। असुर वध की लीलाओं में अद्‌भुत रस कहा जा सकता है। यसोदा को विराट् रूप दर्शन भी अद्‌भुत रस में आ सकता है। इन रसों के वर्णन में सूर की मौलिकता के दर्शन अवश्य होते हैं किन्तु इनका परिपाक न हुआ। करुण रस विप्रलम्भ का ही अंश बन गया है। नन्द यशोदा के वियोग चित्रण में इसका वर्णन हुआ है। इन रसों के कुछ उदाहरण लीजिये—

शान्त—सूर साहित्य में अनेक रसों के वर्णन होने पर भी उसकी आत्मा शान्त-रस है। वहाँ भक्त सूरदास अपने प्राकृत रूप में हमारे सामने आते हैं। उस समय वे कवि अधिक नहीं केवल विनय-शील भक्त हैं। भक्तिरस का एक उदाहरण देखिये—

अब के माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भव अम्बु निधि में कृपासिन्धु मुरारि।

संसार की अनित्यता के सम्बन्ध में एक पद देखिये—

हरि बिन कोऊ काम न आयो।
यह माया झूंठी प्रपंच लगि रतन सो जनम गँवायो॥

वात्सल्य—आचार्य वल्लभ ने बालकृष्ण को इष्टदेव के रूप में उपस्थित किया है। कृष्णलीला पर तो उन्होंने इतना बल दिया कि इतना और किसी ने नहीं दिया। कृष्ण की बाललीला का सम्बन्ध विशेष रूप से यशोदा एवं नन्द से था। काव्य में जब कृष्ण का बाल-चरित्र पूर्ण रूप से विकसित हुआ तभी वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा हुई। वात्सल्य का एक उदाहरण देखिये—

लाला हौं वारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक, मोहन मन विहँसन, भ्रकुटि विकट नैनन पर॥

वात्सल्य रस के चित्रण के अनन्तर नवीनता, व्यापकता और रस की अनेक दशाओं के निरूपण की दृष्टि से शृङ्गार का स्थान महत्वपूर्ण है। उसका विस्तार वात्सल्य से भी अधिक है। शृंगार

के दोनों पक्ष—संयोग-वियोग का चित्रण सूर ने सफलता से किया है। पिछले प्रश्न में हमने इसका विषद रूप से चित्रण कर दिया है। एक दो उदाहरण देखिये—

हिंडोला माई झूलत हैं गोपाल।
संग राधा परम सुन्दरि चहूँछा ब्रज बाल॥

यह तो संयोग का उदाहरण हुआ। एक वियोग का देखिये—

सुपने हरि आयों हौं किलकी।
नींद जो सौति भई रिपु हमको सहि न सकी रति तिलकी॥

हास्य—सूर ने अनेक स्थानों पर हास्य की भी सुन्दर सृष्टि की है। इस हास्य में शिष्टता और मर्यादा है। एक उदाहरण देखिये—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मौसों कहत मोल को लीन्हों तोहि जसुमति कब जायो॥
कहा कहौं यहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु॥
गोरे नन्द यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥
तू मोही को मारन सीखी दाहुहिं कबहुँ न खीजै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि यशुमति पुनि पुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह बल भद्र चबाई जनमत को ही धूत।
सूर श्याम मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

अद्भुत—अद्भुत रस के प्रसंग कवि ने सीधे भागवत से लि हैं। उन में मौलिकता नहीं। पर जहाँ भी ये प्रसंग आये हैं। र का परिपाक बड़ी निपुणता से हुआ है—

कर गहि पग अँगूठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरषि-हरषि अपने रङ्ग खेलत
सिव सोचत बिधि बुद्धि बिचारत बट-बाढ्यो सागर जल भेलत
बिढरि चले घन प्रलय जानि के दिगपति दिग दंतिन्न न सकेलत

भयानक—चरन गहे अँगुठा मुख मेलत ।
उछलत सिंधु धराधर काँप्यो, कमठ पीठि अकुलाई ॥
वीर—सैन साजि ब्रज पर चढ़ि धावहिं ।
प्रथम बहाइ देहुं गोवर्धन ता पाछे ब्रज खोदि बहावहिं ॥
करुण—अति मलीन वृषभानु कुमारी ।
हरि श्रम जल अन्तर तनु भीजै ता लालच न धुवावति सारी ॥

काव्य की कलात्मकता अथवा उसकी चमत्कारिक शैली के विवेचन के लिये अलंकार विशेष सहायक होते हैं। सूर के काव्य में अलंकारों के सर्वोत्कृष्ट रूप का समावेश है। इनकी अलंकार योजना केशव आदि की भांति साध्य नहीं प्रत्युत वह भाव-पक्ष की अभिव्यञ्जना का साधन मात्र है। सूर के अलंकारों में उसके दोनों प्रकार-शब्द व अर्थ का चित्रण है। शब्दालंकारो में उन्होंने यमक, अनुप्रास व ये वीप्सा का विशेष प्रयोग किया है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, प्रतीप आदि हैं। कहीं कहीं विभावना व वक्रोक्ति आदि के दर्शन भी होते हैं। कूट पदों में श्लेष और यमक का प्राचुर्य है, परन्तु यहाँ कवि का ध्येय रसोद्रेक नहीं चमत्कार है। अलंकारो के कुछ उदाहरण देखिये—

यमक—हरि सम आनन हरि सम लोचन हरितह हरिवर आगी ।
हरि हि चाहि हरि न सोहावये हरि-हरि कए उठि जागी॥
अनुप्रास—अल्प दशन कलबल कर बोलनि ।
उपमा— बने हैं विसाल कमल दल नैन ॥
रूपक— नन्दनन्दन वृन्दावन चन्द ।
जदु कुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन बंद ॥
उत्प्रेक्षा—लोचन जनु थिर भृङ्ग अकार। मधुमातल किये उड़इ न पार।
विभावना—मुरली तउ गोपालहिं भावति ।
सुन री सखी जदपि नन्दनन्दहिं नाना भाँति नचावति ।

सूरदास की एक विशेषता उनका रूप सौन्दर्य है। सूर ने अधिकतर राधा-माधव के ही रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है—क्योंकि वही

उनके उपास्य हैं। सूर के कृष्ण सुन्दरता के सागर हैं "देखो माई सुन्दरता को सागर" उनके रूप सौंदर्य का वर्णन कवि करते हैं—

सुन्दर बोलत आवत बैन।
ना जाने तेहि समय सखी री सब तन स्रवन की नैन।
रोम-रोम में शब्द सुरति की नखसिख ज्यों च्रख ऐन॥

....

सूरसागर की सर्वोत्कृष्टता उसके पदों को गीति-माधुर्य है। आचार्य शुक्ल का कहना है कि सूरसागर अवश्य किसी प्राचीन समय से चली आती हुई गीत-पद्धति का ही विकसित रूप है। कुछ भी हो, सूर के पदों का गीति माधुर्य छन्द, शब्द चयन, भाव-सौन्दर्य, व्यंजना और अर्थ माधुर्य इन सभी काव्यांगो के मेल से सुन्दर बन गया है। सूर का शब्द चयन भी अद्वितीय हैं। उन्होंने इसमें माधुर्य को कहीं भी अपने हाथ से नहीं जाने दिया। प्रत्येक अवसर पर उन्होंने भाव-रस के उपयुक्त ही शब्दों का चयन किया है। यथा—

मधुकर काके मीत भये।
दिवस चारि की प्रीति सगाई रस ले अनत गये।

भाव सौन्दर्य और अर्थ व्यञ्जना भी सूर की उत्कृष्ट हुई है॥

भाषा—सूरदास की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रज भाषा नहीं। उनकी भाषा बोल-चाल की प्रवाह पूर्ण और सरस है। (१) उसमें रसों को प्रस्फुटित करने की शक्ति है, (२) वाच्यार्थ के अतिरिक्त वह व्यंग्यार्थ को भली भांति प्रकट करती है। (३) वह भाव की अनुयायिनी है। सूरदास हमारे सामने कवि, भक्त व गायक इन तीन रूपों में आते हैं। उनकी भाषा भी तीनों रूपों में बदली हुई आती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर का काव्य प्रौढ़ है। वास्तव में वे हिन्दी साहित्य जगत के "सूर" हैं।

प्रश्न १५—सूर सागर में प्राप्त यशोदा व नन्द का चरित्र चित्रित कीजिये।

उत्तर—सूरदास के काव्य में यशोदा व नन्द वात्सल्य भक्ति के प्रतीक हैं। यशोदा स्नेहमयी-माता एवं नन्द स्नेही-पिता के रूप में ही सर्वत्र दिखाई देते हैं। इन दोनों का चित्रण हम पृथक पृथक् ही करेंगे।

यशोदा— यशोदा में सूरदास ने मातृ-हृदय का अपूर्व रूप चित्रित किया है। उससे माता शब्द सार्थक हो जाता है। वह कृष्ण की बाल लीलाओं में अपने को भुला देती हैं। वह कृष्ण की ही चिन्ता में व्याप्त रहती हैं। कभी उसे पालने में झुलाती हैं। नींद नहीं आती तो थपकियाँ देकर सुलाना चाहती हैं—

यशोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं जोइ सोइ कछु गावैं।
मेरे लाल को आज निंदरिया काहे न आनि सुलावैं।
तू काहे नहिं बेगि-सी आवैं तो को कान्ह बुलावैं।

वह प्रत्येक क्षण अपने मन को बाल कृष्ण में केन्द्रित कर देती हैं। कृष्ण ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं उसके आनन्द का पारावार नहीं रहता। उसे चिन्ता है कि वे कब घुटने से चलने लगेंगे, कब उनके दांत निकलेंगे।

"कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे यहि कहि विधिहि मनावै"।
कबहिं दंतुली है दूध की देखौं इन नैननि॥

यशोदा का यह चित्रण प्रत्येक सामान्य स्त्री का सा है, इसी में सूर की विशेषता है। यशोदा कृष्ण के प्रत्येक क्रिया कलाप से सुख पाती है। खाने पीने के सम्बन्ध में कृष्ण को कभी भुला भी देती है "कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बढ़ै"। कृष्ण बन में दूर जाते हैं तो उनको शंका होती है कि कोई गाय उन्हें मार न दे। वह प्रत्येक ग्वाल व गोपी को कृष्ण को सौंपती हैं। उनके वापिस लौटने तक द्वार पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। "आवहु कान्ह सांझ की बिरियां" जब कृष्ण मिट्टी खा लेते हैं उस समय का माता यशोदा का रूप देखिये—

मोहन काहे न उगिलौ माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावत महरि हाथ लिये साँटी।
महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ठाटी।
बदन पसारि दिखाइ आपने नाटक की परिपाटी।
बड़ी बार भई लोचन उघरे भ्रम जामिनि नहिं फाटी।
सूरदास नन्दरानि भ्रमित भई कहत न मीठी खाटी॥

कृष्ण की चंचल प्रकृति ने ब्रज की समस्त गोपियों को परेशान रखा था। वे उनके दधि माखन की चोरी ही नहीं करते थे वरन् उनके "गोरस भाजनों" को भी तोड़ डालते थे गोपियां यशोदा के पास जाकर शिकायत करती थीं, किन्तु सरल प्रकृति एवं स्नेहमयी माता को यह विश्वास ही नहीं होता था कि उनका अबोध बालक इस प्रकार की शरारतें कर सकता है। कई बार तो गोपियों ने कृष्ण का अपराध भी प्रमाणित कर दिया। किन्तु यशोदा ने गोपियों को समझा बुझा कर टाल दिया। उनकी समझ में यह बात नहीं आती थी कि जब उनके घर में गोरस का भण्डार है तो उनका कन्हैया दूसरों के यहां चोरी करने क्यों जाता है? जब कृष्ण का यह नटखट-पन सीमा से बाहर हो गया और मां कृष्ण को समझा कर हार गई तो उन्हें क्रोध आ गया और रोस पूर्वक उनके हाथों को रस्सी से बांध उन्हें ऊखल से बांध दिया। और स्वयं हाथ में सोंटी लेकर उन्हें डांटने लगीं कृष्ण हिचकियां लेने लगे गोपियों ने जब यह देखा तो वे यशोदा से इसके लिये मना करने लगीं और कृष्ण को खोलने की प्रार्थना करने लगीं इस पर उन्होंने गोपियों को भी खूब झिड़कियां दी क्योंकि शिकायत लेकर तो वे ही आयीं थीं। यमलार्जुन वृक्ष उखड़े यशोदा ने यह देखा तो कृष्ण को हृदय से लगा लिया और फिर कभी भी कोप नहीं किया। यशोदा का प्रेम इतना पूर्ण है कि उनको कृष्ण के वियोग की जरा भी कल्पना नहीं, अमंगल की आशंका भी नहीं। किन्तु जब कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा जाते हैं तो उनके लिये यह असह्य है। वे रो देती हैं।

मोहन नेक वदन तन हेरो।

राखो मोहिं नात जननी को मदन गोपाल लाल मुख फेरो।

किन्तु जब उन्हें कृष्ण की ओर ब्रज में रहने का आश्वासन नहीं मिलता तो वह दुःखित हो जाती हैं और चिल्लाकर कहती हैं—

गोपालहिं राखो मधुवन जात।

लाज गये कछु काज न सरि हैं बिछुरत नन्द के तात।

रथ आरूढ़ होत वलि बलि गई होई आयो परभात॥

कृष्ण के मथुरा छोड़ कर नन्द जब अकेले ब्रज को लौटते हैं तो एक बार फिर उनका कोप जाग उठता है; और नन्द को धिक्कारती हैं—

यशोदा कान्ह कान्ह कै बूझै।

फूटि न गई तिहारी चारों कैसे मारग सूझै।

इक तनु जरो जात बिन देखें अब तुम दीन्हें फूक।

यह छतियां मेरे कुँवर कान्ह बिनु फाटि भई न द्वै टूक।

यह कहते-कहते यशोदा मूर्छित हो जाती हैं। अब यशोदा को बार-बार कृष्ण की याद आती है वे नन्द को उन्हें ले आने के लिये कहती हैं। कभी उन्हें मक्खन देखकर कृष्ण की याद आती है।

कृष्ण का वियोग उन्हें इतना दीन कर देता है कि वे देवकी के सामने कृष्ण की धाय बनना भी स्वीकार कर लेती हैं—

संदेशो देवकी सों कहियो।

हौं तो धाय तिहारे सुत की मया करति ही रहियो॥

वह हमेशा ही कृष्ण की याद करती हैं। सोचती हैं कि अबकी बार कृष्ण फिर यहाँ आगये तो मैं उन्हें भूलकर भी गाय चराने के लिये नहीं कहूँगी। माखन की चोरी करते हुए भी नहीं बरजूँगी।

मेरो कान्ह कमल दल लोचन।

अबकी बेर बहुरि फिरि आवहु कहा लगे जिय सोचन।

यह लालसा होत जिय मेरे बैठी देखत रहिहौं।

गाय चरावन कान्ह कँवर सों भूलि न कबहूँ कहियों।

जब उद्धव ब्रज से मथुरा जाने लगे उन्होंने कृष्ण के लिये कुछ सन्देश देने के लिये कहा। यशोदा ने शाब्दिक संदेश देने की अपेक्षा उद्धव द्वारा कृष्ण के पास उनकी मुरली भेजकर जो मूक वेदना व्यञ्जित की है उसका अनुभव तो सहृदय पाठक ही कर सकते हैं। वस्तुतः यशोदा के मातृ-हृदय के चित्रण में सूरदास ने कमाल करदी है।

नन्द—सूर-काव्य के नन्द गोकुल के सम्भ्रांत व्यक्ति हैं। वृद्धावस्था होने के कारण वे "नन्दबाबा" कहलाते हैं। इस अवस्था में कृष्ण बलराम जैसे भुवनभूषण पुत्रों को पाकर उनके हर्ष का पारावार नहीं। वैसे सूर ने नन्द के चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है किन्तु यशोदा के चरित्र चित्रण में ही एक प्रकार से नन्द का चित्रण भी हो गया है, किन्तु जैसे नन्द व यशोदा की प्रकृति में नैसर्गिक भेद है इसी प्रकार का भेद उनके चरित्र में भी होगया है। कृष्ण के वियोग के समय जबकि यशोदा मूर्छित तक होजाती हैं, वहाँ नन्द पुरुष होने के कारण कुछ कठोर ही बने रहते हैं। यशोदा नहीं जानतीं कि उनके हृदय में वेदना है और उन्हें उलाहना देती हैं, तब वे कुछ विचलित हो उठते हैं और उन्हें मूर्छा आजाती है। इसके बाद उनमें वियोग के कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते। वे कृष्ण के वियोग को बड़े धैर्य से सहन करते हैं।

प्रश्न १६—सूरसागर की मुख्य नायिका राधा का चरित्र चित्रित कीजिये।

उत्तर—सूर काव्य की प्रधान नायिका राधा है, जो परम सुन्दरी गोप बालिका है। उसका वर्ण गौर, उसके प्रत्येक अंग की शोभा अनुपम है। सूर ने अगणित पदों में राधा के रूप सौंदर्य का वर्णन किया है। सब में राधा के प्रत्येक अंग का विस्तृत वर्णन है किन्तु उसके नेत्रों की छवि का तो अत्यन्त ही उत्कृष्टता से वर्णन किया है।

सूरदास की राधा न चंडीदास की राधा की तरह परकीया है न विद्यापति की राधा के समान प्रेयसी, न व साधारण अथवा

असाधारण गोपी है। वह तो कृष्ण की पत्नी है। नायिका भेद की परिभाषा में उसे हम स्वकीया कहेंगे।

राधा व कृष्ण से अध्यात्मिक तत्त्व की व्यंजना सूरदास ने की है उसका वर्णन सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों वाले प्रश्न में हम कर चुके हैं। यहाँ हम उसके लौकिक पक्ष का ही चित्रण करेंगे।

एक दिन कृष्ण खेलने निकले वहीं वे राधा को "औचक" ही देखते हैं। वह भी उन्हीं की तरह बालिका है, उन्हीं की तरह सखियों के साथ है। राधा को देखते ही कृष्ण मुग्ध हो गये हैं।

कृष्ण पूछते हैं—तू कौन है? किसकी बेटी है? ब्रज में तो तू दीख नहीं पड़ी। राधा कहती है—मैं ब्रज की ओर क्यों आती? अपने ही पुरने में खेलती रहती हूँ। हाँ, सुनती रहती हूँ कि नन्द का लड़का माखन की चोरी करता है। कृष्ण कहते हैं—तुम्हारा हम क्या चुरा लेंगे? चलो साथ खेलने चलें। हमारी, तुम्हारी जोड़ी रही। यहीं से दोनों के मन में प्रेम-पूर्ण-स्नेह उदित होता है। कृष्ण कहते हैं—

खेलन कबहुं हमारे आवहु नन्द सदन ब्रज गाँव।
द्वारे आइ टेर मोहि लीजो कान्ह है मेरो नाऊँ॥
जो कहियो घर दूरि तुम्हारो बोलत सुनिये टेर।
तुमहिं सौहं वृषभानु बाबा की प्रात साँझ एक फेर॥
सूधी निपट देखियत तुमकौं ताते करियत साथ।
सूर स्याम नागर उत नागरि राधा दोउ मिलि गाथ॥

अब राधा-कृष्ण बालिका-बालक नहीं, वे नागरी-नागर हैं। कृष्ण इशारे में ही राधा से कहते हैं—

खरिक आवहु दोहनी लै यहै मिस छल पाइ।
गाइ गिनती करन जैहैं मोहि ले नंदराइ॥

धीरे-धीरे राधा का कृष्ण का प्रेम बढ़ता है। कभी देर से घर जाती है। माँ कारण पूछती है तो कहती है खरिक देखने गई थी। कृष्ण के विना उसको अब अच्छा नहीं लगता। अत्यन्त व्याकुल हो जाती है। माँ से दोहनी माँगती है। और कहती है—

खरिक माहिं अब ही ह्वै आई अहिर दुहत अपनी सब गैया।
ग्वाल दुहत तब गाइ हमारी जब अपनी दुहि लेत॥
घरिक मोहि लगिहै खरिका में तू आवै जनि हेत।

उधर नन्द भी कृष्ण को लिये खरिका में आते हैं। कृष्ण राधा को देख बुला लेते हैं। नन्द कहते हैं खेलो, दूर मत जाना। मैं गिनती करता हूँ, पास रहना। देखना, वृषभानु की बेटी, कान्ह को कोई गाय न मारे। अब राधा-कृष्ण अकेले हैं। यहीं से सूरदास शृङ्गार-सागर में प्रवेश करते हैं। राधा कहती है—नन्द बाबा ने जो कहा वह सुना? अब छोड़कर गये तो मैंने पकड़ा। अब मैं तुम्हारी बाँह नहीं छोड़ूंगी श्याम कहते हैं—कैसी उपरफट बातें करती है! छोड़।

इस प्रसंग तक सूर ने बालकेलि व प्रेम-लीला का ऐसा मिश्रण कर दिया है कि उनके इस कौशल पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। इसके बाद एक दिन जब आकाश में काली घटायें छा जाती हैं। नन्द इस आँधी-पानी को देख डरते हैं। राधा को बुला कर कहते हैं—कान्ह को घर लिये जा। राधा-कृष्ण बूँदों में भीगते-भीगते बन से लौटते हैं—परस्पर सटे-सटे मार्ग में रति-क्रीड़ा भी करते हैं। यहीं से कृष्ण-राधा के सम्भोग शृङ्गार का वर्णन होता है।

चूमत अंग परस्पर जनु जुग चंद करत हित धार।
रसन हसन भरि चापि चतुर अति रंग विस्तार॥

फिर एक दिन राधा कृष्ण के घर आती है—

खेलन के मिस कुँवरि राधिका नन्द महर के आई हो।
सकुच सहित मधुरे करि बोली घर हौं कुँवर कन्हाई हो॥
सुनत श्याम कोकिल-सम वाणी निकसे अति अतुराई हो।
माता सों करत कलह हरि सो डारियो बिसराई हो॥
मैया री तू इनको चीन्हति बारम्बार बताई हो।
यमुना-तीर कालिह मैं भूल्यौ बाँह पकरि ले आई हो॥
आवति यहाँ तोहि सकुची है मैं दै सौंह बुलाई हो।

यशोदा ने कहा—बुला लो। कृष्ण ने राधा का हाथ पकड़ कर

उसे माँ के पास बिठा दिया। यशोदा व राधा में वार्तालाप होता है। यशोधा राधा के माता-पिता का परिचय पूँछती है। राधा परिचय देती हैं कि मैं वृषभानु की बेटी हूँ। यशोदा कहती हैं मैं जानती हूँ उन्हें, बड़े "लंगर" हैं। राधा भी वैसे ही उत्तर देती हैं—उन्होंने तुम्हें कब छेड़ा ? यशोदा हँसकर उसे हृदय से लगा लेती हैं। फिर उसको संवार देती हैं और खेलने के लिये कहती है। एक बार राधा, कृष्ण की मुरली चुरा लेती हैं। कई बार दोनों मान करते हैं, किन्तु फिर वही आँखों की लड़ाई। राधा की माँ उसे उलाहना देती है—

काहे को तुम जँह-तहँ डोलति हमको अतिहि लजावति।
अपने कुल की खबरि करौधौं सकुच नहीं जिय आवति॥

एक बार कृष्ण ने राधा की गौयें दुह दीं। वह लौटती हैं किन्तु लौटा नहीं जाता। अन्त में मूछित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। सखियाँ सँभाल कर घर लाती हैं। घर जाकर वे कहती हैं—इसे श्याम भुजंग ने डस लिया। कोई गारुड़ी बुलाओ, गारुड़ी आते हैं। पछता कर चले जाते हैं। सखियों के कहने पर मां कृष्ण को बुलवाती हैं। स्वयं वृषभानु पत्नी उन्हें बुलाने जाती हैं। यशोदा के पांव पड़ती हैं। कृष्ण राधा के पास पहुँचते हैं, उसकी मूर्छा उतर जाती है।

इसके बाद हम राधा को पनघट लीला में अन्य सखियों के साथ पाते हैं—

राधा सखियन लई बोलाइ।
चलहु यमुना जलहिं जैयै चलीं सब सुख पाइ॥
सबनि एक एक कलश लीन्हों तुरत पहुँची जाइ।
तहाँ देख्यों श्याम सुन्दर कुँवरि मन हरषाइ॥
नन्द नन्दन देखि रीझे चितै रहै चितलाइ।
सूर प्रभु की प्रिया राधा भरत जल मुसुकाइ॥

दान लीला प्रसंग में भी राधा है—

व्रज युवती नितप्रति दधि बेचन बनि बनि मथुरा जाति।
राधा चन्द्रावलि ललितादिक बहु तरुणी इक भाँति॥

इसमें राधा का उल्लेख पृथक् नहीं हुआ। इसके अनन्तर अनेक गोपियां भी कृष्ण की लीला में भाग लेने लगती हैं। गोपियों के साथ कृष्ण अनेक लीलाएं रचते हैं। कृष्ण की बंशी-ध्वनि गोपियों को मोह लेती है। वे सब काम-काज छोड़ कृष्ण के पास पहुँचती हैं और उनकी लीला में भाग लेती हैं। इस युवती मण्डली में राधा ही प्रधान है। वही कृष्ण की मुख्य नायिका है। रास का वर्णन देखिये—

रास मंडल मध्य श्याम राधा।
मनौ घन बीच दामिनी कौंधति, सुभग एक है रूप द्वै नाहिं बाधा।
नायिका अष्ट अष्टहु दिशा सोहहीं बनी चहुँपास गोप कन्या।
मिले सब संग नहिं लखति कोउ परस्पर, बने षष्ठदश सहस कृष्ण सैन्या।
सजे शृङ्गार नवसात जगमग रह्यो, अंग भूषण रैनि बनी तैसी।
सूर प्रभु नवल गिरधर नवल रधिका, नवल ब्रज सुता मंडली जैसी॥

सूरदास गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेम लीला दिखाते हुए भी दाम्पत्य-प्रेम केवल राधिका से ही दिखाते हैं।

रास के प्रसंग में कृष्ण, राधा के साथ अंतर्धान हो जाते हैं; परन्तु राधा को गर्व होता है और वह कृष्ण के कन्धे पर चढ़ना चाहती है। फलस्वरूप कृष्ण अंतर्धान हो जाते हैं और गोपियाँ राधा को एक पेड़ के नीचे बिलखती पाती हैं। उसका गर्व दूर हो जाता है।

कृष्ण एक बार पुनः राधा के बिरह में आकुल हो जाते हैं भांति भांति से राधा को मनाना चाहते हैं, किन्तु राधा नहीं मानती—

भरि-भरि अँखियन नीर लेति पै ढारति नाहिं अतिरिस
कांपति अधर करकि करि भृकुटि तानति।

अन्त में कृष्ण मूर्छित हो जाते हैं, किन्तु राधा का मान नहीं टूटता क्योंकि उसे विश्वास है कि कृष्ण उसके ही हैं—

नांहि हठ परयौ प्राण वल्लभ सो छूटत नहीं छुड़ाये।
देखो मूरछि परयो मनमोहन मनहुँ भुगंगिनि खायो॥

यह तो हुई संम्भोग शृङ्गार की बात। विप्रलम्भ में तो राधा का

रित्र और भी खिल जाता है। जिस दिन अक्रूर कृष्ण को मथुरा जाते हैं, उस रात राधा को नींद नहीं आती।

आजु रैनि नहिं नींद परी।
जागत गनत गगन के तारे रसना रटत गोविन्द हरी।

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा की जो दशा है, उसका मार्मिक वर्णन देखिये—

एक पथिक को मार्ग में देख कर राधा बुला लेती हैं और कहती हैं—

कहियो पथिक जाइ हरि सौं मेरो मन अटको नैनन के लेखे।
इहै दोष दै दै झगरत है तब निरखत मुख लगी क्यों निमेषे।
कै तो मोहिं बताय दयकियो लगी पलक जड़ जाके पेखे।
ते अब सब इनपै भरि चाहत विधि जो लिखे दरशन सुख रेखे।

गोपियां जब पंथी के सामने कृष्ण को दोष देती हैं तब राधा कह उठती है—

सखी री हरि को दोष जनि देहु।
ताते मन इतनो दुख पावत मेरोई कपट सनेहु।

भ्रमर गीत के प्रसंग से राधा का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु ब्रज से लौटने पर उद्धव कृष्ण से जो कहते हैं उससे यह स्पष्ट होता है कि उनके आगमन की बात सुन कर राधा द्वार तक अवश्य चली आई थीं। द्वार पर खड़ी राधा का वर्णन उद्धव ने इस प्रकार किया है—

देखी मैं लोचन चुवत अचेत।
मनहुँ कमल शशि परस ईश को मुक्ता-गनि गनि देत।
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत अरध श्वास न लेत॥
मानहुँ मदन मिले चाहित हैं मुक्त मरुत समेत।
श्रवण न सुनत चित्र पुतरी लौं समुझावत जितनेत॥
कहुं कंकन कहुँ गिरि मुद्रिका कहुँ तांटक कहुँ नेत।

मनहुँ बिरहदव जरत विश्व सम राधा रुचिर निकेत।
धुज होइ सूखि रहि सूरज प्रभु बँधी तुम्हारे हेत॥

वे अन्य गोपियों के समान अपना संदेश भी न दे सकीं ग[illegible] का कंठ भर आता है। और जब कुछ दिया भी तो केवल इतना ही-

इतनी विनती सुनो हमारी।
वारक हू पतिया लिख दीजै।
चरण कमल दरसन नव नौका करुणा सिंधु जगत जस लीजै
सूरदास प्रभु आस मिलन की एकबार आवन ब्रज कीजै

इसके बाद राधा के दर्शन तब होते हैं जब श्रीकृष्ण कुरु[illegible] से लौट रहे हैं। उनके साथ रुक्मिणी भी हैं। राधा को विश्व[illegible] नहीं होता। उनका विरह उनके लिये इतना स्वभाविक होगया कि कृष्ण के निकट आने पर भी उनकी प्रतीक्षा से अधीर हो जा[illegible] हैं एवं मिलन पर भी विश्वास नहीं करतीं। रुक्मिणी के पूछने कृष्ण उन्हें राधा को दिखाते हैं:—

हरि जी इतै दिन कहाँ लगाये।
तबहिं अवधि में कहत न समुझी गनत अचानक आये।
भली करी जु अबहिं इन नैनन सुन्दर चरण दिखाये॥
"जानी कृपा" राज काजहुं हम निमिष नहिं बिसराये।
विरहिन विकल विलोकि सूर प्रभु धाइ हृदय कर लाये॥
कछु मुसुकाय कह्यौ सारथि सुन रथ के तुरंग छुराये।

इसके अनन्तर रुक्मिणी राधा को अपना लेती हैं। कृष्ण आजाते हैं।—

"राधा माधव भेंट भई"

अंत में कृष्ण राधा से कहते हैं हम तुम में तो कोई अन्तर नह[illegible] और उसे ब्रज भेज देते हैं। सखी के प्रति राधा के इस वचन से रा[illegible] का चित्रण समाप्त होता है—

कहत कछु नाहीं आज बनी।
हरि आए हौं रही ठगीसी जैसे चित्त धनी।

राधा के चरित्र की विशेषता है, सर्वस्व समर्पण। संयोग व
योग के अवसरों पर उसने पूर्ण विश्वास किया है उसने आर्य-
ला होने के नाते अपने प्रेमी या पति के दोषों को भी अपने पर
लिया है। वस्तुतः राधा का यह चित्रण सूर की सबसे उत्कृष्ट
मौलिक कल्पना है।

प्रश्न १७—सूर काव्य के मुख्य नायक श्री कृष्ण का चित्रण
क दृष्टियों से हुआ। विवेचन कीजिये।

उत्तर—सूरदास के कृष्ण लीला पुरुष हैं। सूरसागर की
स्त लीलाएं उन्हीं से सम्बन्धित हैं। सूर काव्य के नायक ही
हीं प्रत्युत सूरदास के आराध्य देव भी हैं। इसीलिये कवि ने उनका
न मनोयोग पूर्वक किया है। सूर काव्य के समस्त पात्रों में
कृष्ण की प्रधानता ही नहीं, अपितु शेष समस्त पात्रों के चरित्र भी
ण चरित से गुथे हुए हैं। सूर काव्य में से कृष्णचरित को निकाल
से अन्य का कोई भी महत्त्व नहीं रह जाता। श्री कृष्ण अपनी
लीला से निकल दूसरी में चले जाते हैं। पुरानी लीला की एक
स्मृति मात्र उनके मन में रहती है, इतने पर भी वे प्रत्येक लीला
पूर्ण हैं।

सूरदास के कृष्ण परम सुन्दर, स्वस्थ एवं चंचल प्रकृति के
खट बालक हैं। एक समृद्ध ग्रामीण परिवार के बाल की भाँति
का लालन-पालन बड़े लाड़ प्यार से हुआ है। वृद्धावस्था की
तान होने के कारण वे मातापिता के तो दुलारे हैं ही, साथ ही
में ऐसा भी आकर्षण हैं कि वे ब्रज के नर-नारी तथा पशु पक्षियों
भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के गान में सूर ने अपनी विलक्षण
भा का परिचय दिया है। बाल कृष्ण की प्रत्येक चेष्टा का
ने अत्यन्त स्वाभाविक एवं विशद वर्णन किया है। श्रीकृष्ण
नी लीलाओं से नन्द यशोदा को परम आनन्दित करते हैं। वे
ना भाँति के खेल-कूद और आमोद-प्रमोद द्वारा गोप बालकों

को एवं अपने रूप-लावण्य द्वारा गोप बालिकाओं एवं गोपाङ्गना
को उल्लसित करते हैं। वे व्रज नारियों के घरों में घुस उन
दधि-माखन चुराकर खा जाते हैं। पनघट व यमुना-तट पर
परेशान करते हैं। वे एकान्त वन में जाती हुई गोपियों को रोक
उनसे 'दान' माँगते हैं एवं उनके आना-कानी करने पर उ
दधिभाजनों को तोड़ डालते हैं। कृष्ण की इन करतूतों से गोपि
रुष्ट भी हैं, पर इससे उन्हें सुख भी मिलता है और इसे अ
अहोभाग्य समझती हैं।

श्री कृष्ण मुरली बजाने की कला में भी अत्यन्त निपुण
जब भी वे मुरली बजाते हैं समस्त व्रज को आत्म विभोर कर
हैं। शरद् की ज्योत्स्ना-ज्योतित रात्रि में वे नाना प्रकार के ग
नृत्य आदि द्वारा सबका मनोरंजन करते हैं।

उन्होंने अल्पायु में ही बलशाली दैत्यों का संहार एवं खेल
में ही कालिय दमन जैसे साहसपूर्ण कार्य कर डाले। कंस
अत्याचारियों को भी मार डाला। उनके इन्हीं दैवी कार्यों से प्रभा
हो व्रजवासी उन्हें एक क्षण के लिये भी छोड़ना नहीं चाह
उन्हें अवतारी पुरुष भी समझने लगते हैं, किन्तु दूसरे ही
साधारण सखा !

जब अक्रूर श्री कृष्ण को लेने के लिये आते हैं और वे म
जाने लगते हैं, उस समय उनका मन अपने माता-पिता एवं
सखाओं से बिछुड़ते तनिक भी विचलित नहीं होता जब कि स
व्रजवासी आर्तनाद करते हैं। मथुरा में भी कंस को मारने के बा
नन्द आदि को वापिस भेज देते हैं। स्वयं वहाँ की राजनीति
इतने मग्न हो जाते हैं कि व्रज के समीप होने पर भी वहाँ नहीं ज

कृष्ण की अनुपस्थिति में तो व्रज की बहुत ही बुरी अवस्था
सभी व्रजवासी उनके विरह से व्याकुल थे किन्तु कृष्ण को उन्
याद तक न आई। बहुत दिनों बाद उन्होंने अपने मित्र उद्धव
भेज दिया। उद्धव गोपियों को समझाने आये किन्तु स्वयं ही

प्रेम रस में डूब गये। लौटने पर उद्धव ने श्रीकृष्ण को ब्रज की जो दशा बताई उसके सुनने पर भी वे ब्रज नहीं गये।

मथुरा से जब वे बहुत दूर द्वारिका गये, तब जाते समय भी ब्रजवासियों से नहीं मिले। वहाँ उन्होंने गार्हस्थ्य सुख का उपभोग किया। द्वारिका के राजा के रूप का वर्णन सूर ने संक्षेप में ही किया है। सुदामा दारिद्रय मोचन में उन्होंने उनके दीन बन्धु स्वरूप का भी दर्शन कराया है, पर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूर को बाल-कृष्ण के स्वरूप के वर्णन के अतिरिक्त किसी भी वर्णन में मन नहीं रमता।

अन्त में कृष्ण को द्वारिका में ब्रज की याद दिलाती है तब वे सूर्य ग्रहण पर्व पर कुरुक्षेत्र जाते हैं। वहीं ब्रजवासियों को भी बुलाते हैं। वहीं ब्रजवासियों को कृष्ण-मिलन का सौभाग्य प्राप्त होता है।

समस्त सूरसागर का अध्ययन करने पर श्रीकृष्ण का चरित्र हमारे समक्ष निम्न रूप में आता है।

क—अत्यंत मुखर बालक के रूप में।

ख—चंचल किशोर के रूप में।

ग—किशोर प्रेमी के रूप में।

घ—क्रीड़ा कौतुक प्रिय सखा के रूप में।

ङ—तरुण नायक के रूप में।

च—अति प्राकृत अलौकिक सत्ता के रूप में जो अनेक आश्चर्यमय लीलाएँ करती हैं; एवं भक्तों की रक्षा करती हैं।

छ—गौरव गम्भीर महाराज के रूप में!

यद्यपि इसमें कृष्ण के ज्ञानी एवं राजनीतिज्ञ रूप का भी निर्देश हुआ है परन्तु कृष्ण के चरित्र के ये अंग भागवत व महाभारत में ही मुख्य हैं। सूरदास को तो वे—जैसे हम पहले भी कह चुके हैं कि केवल लीलामय शिशु चंचल किशोर प्रेमी के रूप में ही अधिक प्रिय हैं।

संक्षेप में कृष्ण के चरित को दो भागों में बाँटा जा सकता है। (१) उनका असामान्य या अलौकिक चरित्र एवं (२) सामान्य या लौकिक चरित्र। प्रथम रूप में सूर ने कोई विशेषता उत्पन्न नहीं की। हाँ उनका मानवीय चरित पूर्ण मौलिक है। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र से ब्रज आने पर कृष्ण को महाराज के सिंहासन से उतर कर राधा के पास सामान्य प्रेमी के रूप में जाना पड़ा, उसी प्रकार अलौकिक कृष्ण चरित्र सूरदास के लिये एक सामान्य पुरुष का सामान्य चरित्र बन गया है। उन्होंने दो चरित्र अलग-अलग प्रकट नहीं किये उन्होंने सामान्य व असामान्य का इतना सुन्दर सम्मिश्रण किया है कि उसमें भक्ति और काव्य के विकास के लिये एक साथ ही स्थान मिल सका है।

प्रश्न १८—दृष्टकूट किसे कहते हैं? सूर के दृष्टकूट किस प्रवृत्ति के सूचक हैं? क्या सूरसागर व साहित्य लहरी के दृष्टकूट विभिन्न व्यक्तियों की रचनायें हैं?

उत्तर—दृष्टकूट एक प्रकार का अलङ्कार है। इसमें शब्द चमत्कार का शब्दों की क्रीड़ा होती है। कष्ट-साध्य दूरागत अर्थों का चमत्कार उपस्थित किया जाता है। इसमें शब्दार्थों का आधार अभिधा शक्ति होती है। कोष में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। एक शब्द के अर्थ से दूसरे शाब्दिक अर्थ की प्रतीति और दूसरे से तीसरे की अर्थ की, इस प्रकार शृङ्खला रूप में (अर्थ) प्रतीति होती है। इस प्रकार वांछित अर्थ चमत्कार स्पष्ट हो जाता है। जैसे—

“मन्दिर अरध अवधि हरि, बढ़ि चले हरि अहार चलि जात”

इसमें मन्दिर = मकान उसका आधा पाख = पक्ष = १५ दिन इसी प्रकार हरिअहार में, हरि शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ सिंह भी है—सो हरि = सिंह उसका आहार = माँस, माँस का उच्चारण परिपर्तन करने पर मास = ३० दिन। अतः इस पदांश का अर्थ हुआ कि श्री कृष्ण ने १५ दिन की अवधि दी थी, पर अब तो महीना भी बीत गया।

ज्ञान और साधना इतने हो जायँ कि उनमें विकार आजाय, इस प्रकार की भावना हमारे देश में प्राचीन काल से चली आती है। ऋषियों ने इसे वाञ्छनीय समझा कि जिस ज्ञान को उन्होंने अत्यन्त कष्ट से प्राप्त किया है वह उपयुक्त पात्र को ही मिले, ऋग्वेद में बहुत कुछ प्रतीकों के रूप में कहा गया है। नरमेध व अश्वमेध को मानसिक बलि का प्रतीक बनाया गया।

हिन्दी में इस प्रकार की प्रवृत्ति का परिचय हमें सिद्धों की कविताओं में ही मिलजाता है। कबीर पंथियों ने भी साधना द्वारा प्राप्त ज्ञान को छिपाने के लिये कूटपद कहे। कबीर की उलट बाँसियां तो इस दृष्टि से प्रसिद्ध ही हैं। लोक साहित्य में भी पहेलियाँ मुकरियाँ आदि चलती थीं। उनमें भी कौतुक के लिये कूट उपस्थित किया जाता था। इन्हीं दो उद्गमों से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य में यह प्रवृत्ति आई। कुछ ऐसा कहा जाय जिसमें चमत्कार हो, अर्थ छिपाने की चेष्टा हो, पाण्डित्य का प्रदर्शन हो सके। यमकालंकार ने इसमें विशेष सहायता की। भक्ति साहित्य में इस प्रकार का सर्व प्रथम प्रयोग विद्यापति की पदावली में मिलता है—

"हरिसम आनन हरिसम लोचन हरितह हरिबर आगी।
हरिहि चाहि हरि-हरि न सोहावए हरि-हरि कए उठि जागी।"

विद्यापति के बाद सूर का साहित्य आता है। उनके दृष्टकूटों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे विद्यापति से प्रभावित थे। अस्तु; हमें अब यह देखना है कि सूर के ये पद किस प्रवृत्ति के सूचक हैं? कुछ लोग तो इसे सूर की कल्पना विलास मात्र समझते हैं किन्तु बात वास्तव में ऐसी है नहीं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनमें कवि की एक विशिष्ट मनोवृत्ति का प्रकाशन हुआ है। सूरदास ने गोपियों की दान लीला में अंगों का दान कराया है। इसमें दान की वस्तुओं को गिनाना था इसी प्रकार वे राधा की माता द्वारा राधा का नखसिख वर्णन कराते हैं। मानवती राधा के रूप की प्रशंसा वे सखियों द्वारा कराकर मिलन की प्रार्थना कराते हैं। भक्तराज सूरदास

की वाणी से इन वर्णनों का साधारण भाषा में आना उचित न था, इसलिये उन्होंने इन प्रसंगों में कूट शब्दों का प्रयोग किया है। मानकी अवस्था में स्पष्ट रूप से कहने में सखी की धृष्टता होती है। दृष्टकूट शब्दों के द्वारा सखी अपना मन्तव्य कह देती है। राधा और कृष्ण दोनों की अवस्थाओं का गूढ़ार्थ द्वारा ज्ञान हो जाता है। उदाहरण के लिये निम्न कूट को लीजिये:—

राधे हर रिपु क्यों न दुरावति।
सैल सुतापति तासु सुतापति ताके सुतहि मनावति॥
हरि बाहन सोभा यह ताकी कैसे धरे सुहावति।
द्वै अरु चारि छहौं वै बीते कहु क्यों गहरु लगावति॥
नौ अरु सात एजु तँहँ सोहत तै तु कहि क्यों दुरावति।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को श्री रंग-रंग भरि आवति॥

गोपी राधा से कहती है कि हे राधे! तू मान किये तो बैठी पर हररिपु = कामदेव को क्यों नहीं छिपाती। सैल सुता = गिरिज उसका पति शंकर, शंकर की सुता लक्ष्मी, उस लक्ष्मी का प विष्णु = विष्णु का पुत्र कामदेव (कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न कामदेव व अवतार माना जाता है) तू उसको मनाती है। भाव यह है कि नित्य प्रति मन में कामदेव का भजन करती है। दो + चार + छ अर्थात् बारह घन्टे बीत चुके हैं तू देर क्यों लगा रही है। नौ + सात = सोलह, १६ शृङ्गारों से तेरा अंग-अंग शोभित हो रहा है। तेरे अं में कृष्ण के मिलन का रंग भरा है।

कैसी सुन्दर व्यञ्जना है। सखी ने राधा के हृदय की प्रेमोत्कट और कृत्रिम मान को भी प्रकट कर दिया है। एवं उसमें राधा धृष्टता भी नहीं दिखाई गई है।

इसी प्रकार कृष्ण के समक्ष सखी राधिका के नख-शिख वर्णन करती है। वह रूप का, शयोक्ति का आश्रय लेकर अत्यन्त सु काव्य-सौन्दर्य का प्रतिपादन हुआ है—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त ता पर सिंह करत अनुराग॥
हरिपर सरवर, सरवर, गिरिवर, गिरिपर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक-पिक मृग-मद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग॥

इन प्रतीकों का अर्थ—गज क्रीडा = चाल, सरवर = नाभि, गिरिवर = कुच, कंज = कुचाग्र, कपोत = कंठ, अमृतफल = मुख, पुहुप = चिबुक (ठोडी) पल्लव = ओष्ठ, शुक नासिका, पिक = स्वर, खंजन = नेत्र, धनुष = भौंह, चन्द्रमा = मस्तक, मणिधरनाग = सिन्दुर बिन्दु के ऊपर की लट।

भाव यह है कि—राधा के शरीर का सौन्दर्य एक विचित्र बाग की भांति है, जिसमें दो चरण-कमलों के ऊपर गज की सूंड के समान कोमल जंघाएं हैं। उनके ऊपर सिंह के समान कटि है। कटि पर नाभी और उसके ऊपर वक्ष, तथा वक्ष पर दो कुच हैं। उसके ऊपर कबूतर के समान कोमल और पतली सी गर्दन है तथा गर्दन के ऊपर ठोडी है। उसके ऊपर मुख और उस पर पल्लव अर्थात् अधरोष्ठ हैं। उस पर नासिका, कोयल के समान वाली, बिन्दी और बाल हैं मुख रूपी चन्द्रमा के ऊपर, खंजन पक्षी के समान आँखे और फिर भौंह हैं। उसके ऊपर वेणी है। इस प्रकार चतुर गोपी कृष्ण को राधा के अधरामृत का पान करने की प्रेरणा देती है।

अलङ्कार स्पष्ट करने और नायिका भेद का निरूपण करने के लिये भी कूट का प्रयोग किया गया है यही सूर की मौलिकता है। देखिये :—

ठाढी जलज-सुता कर लीन्हें।
दधि सुत बाहन हित सजनी भष विचारवित दीने॥
को जानै केहि कारन् प्यारी सो लख तुरते उठाने।
चपला औ बारह रस आखर आग देखि झपटाने॥

तद् गुन देख सबै मिल सजनी मन ही मन मुसुकानी।
सूर श्याम को लगी बोलावन आपु सयानप सानी ॥

इस पद्य में राधा के अज्ञात यौवन का वर्णन है। अज्ञात यौवना में यौवन का प्रादुर्भाव देखकर सखियाँ हँसीं और कृष्ण को बुलाने लगीं।

इस प्रकार सूरदास के दृष्टकूटों में कवि का एक-एक विशेष प्रयोजन परिलक्षित होता है। ये दृष्टकूट सूर की भक्ति भावना और काव्य कला के मणि कांचन संयोग से सुशोभित हैं।

साहित्यलहरी के दृष्टकूटों में उक्त प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते उसमें कवि की आलंकरिक प्रवृत्तियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। इसमें यमक का प्रयोग विशेषतया हुआ है:—

"सारँग सम कर नीक, नीक सम सारँग सरस बखाने।
सारँग बस भय, भय बस सारँग, सारँग विसमें साने ॥"

इसमें सारँग शब्द के, हरित, राग सारँग, कृष्ण, कमल, इंद्र आदि अनेक अर्थ हैं।

इसी प्रकार अनेक पदों में श्लेष, परिसंख्या, मुद्रा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। यथा:—

'भूसुत मेघकाल निसि इनके आदि वरन चित आवै ॥
भूसुत = कंज, मेघकाल = वर्षा, निसि = जामिनी,
इनके आदि वरन अर्थात् कुब्जा कृष्ण के मन में समाई है।

संख्या शब्दों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिये किया गया है। साहित्यलहरी के निर्माण काल के विषय में कवि कहता है:—

"मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लखि सुबल संवत पेख।"

मुनि = ७, रसना = २, या = १, रस = ६, गणेशदसन = १, के द्वारा और "अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार रस का अर्थ हुआ १६२७, या १६१७। इस प्रकार साहित्य लहरी के पदों में भाव की अपेक्षा कला की ही प्रधानता है। भाषा शैली के बिचार से तो साहित्

लहरी सूरसागर की विभिन्न शैलियों में किसी के समकक्ष नहीं रखी जा सकती। साहित्यलहरी सूरसागर के उन पदों के अनुकरण में रची जान पड़ती है, जिनमें कवि की उच्च कवित्व शक्ति और काव्य कला का उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है। साहित्य लहरी की कूट शैली में रूपकातिशयोक्ति अलंकार नहीं प्रत्युत प्रहेलिका अलंकार की प्रधानता है। इसी कारण से कुछ विद्वान इसे सूर की रचना नहीं मानते किन्तु हम इसी पुस्तक के एक प्रश्न में विचार कर चुके हैं कि सातित्यलहरी निश्चत ही सूर की रचना है, उसकी रचना का विशेष हेतु था। अत: पण्डितों का यह सिद्धान्त कि सूरसागर व साहित्य-लहरी के दृष्टकूट दो विभिन्न कवियों के हैं यह ठीक नहीं इन दोनों के लेखक एक ही हैं और वह हैं सूरदास।

प्रश्न १९—हिन्दी काव्य में पद-साहित्य के विकास को देखते हुए उसमें सूर का स्थान निर्धारित कीजिये।

उत्तर—सूर ने अपनी रचना गेय पदों में की है। सूरसागर की अत्यन्त उत्कण्ठा उसके पदों का गीति माधुर्य ही है। गीति काव्य की परम्परा प्राचीन काल से चली आती है। सामवेद के रथन्तरादि गीत यज्ञ के अवसर पर गाये जाते थे। धार्मिक कृत्यों के साथ सामाजिक पर्व और उत्सवों में भी गीति-काव्यों का प्रचार था। जब समाज में संघर्ष प्रबल हुआ तो गीतिकाव्य भी धार्मिक शान्ति और समाजिक चहल-पहल को छोड़कर उग्र रूप धारण करने लगे। भक्ति व विनोद के स्थान पर वे विप्लव एवं विरोध भाव के उत्तेजक बन बैठे। माधुर्य एवं प्रसाद के स्थान पर उनमें ओज भी भरने लगा। सूर ने जिस युग में अपनी रचना की उससे पूर्व उक्त तीनों प्रकार के गीति काव्य प्रचलित थे। सूर की रचना यद्यपि प्रसाद गुण सम्पन्न एवं माधुर्य भाव मांडित है तथापि उसमें ओज की भी मात्रा विद्यमान है। सूरने यह गीति शैली अपने पूर्ववर्ती जयदेव, विद्यापति एवं कबीर आदि से धरोहर के रूप में प्राप्त की और उसे अपनाकर और भी गौरवान्वित किया।

हिन्दी साहित्य में गीति-काव्य की परम्परा वीर-गीतों से आरम्भ होती है। उस समय के कवि अपने आश्रयदाताओं के यशोगान या युद्धोन्मुख वीरों को उत्साह प्रदान करने के लिये वीर गीतों की रचना किया करते थे। देश में वीरता के लोप के साथ ही वीर गीतों की ध्वनी भी मन्द पड़ गयी। इसके अनन्तर सन्त कवि कबीर आदि ने निर्गुण भक्ति के गीत गाये, जो सूर के समय तक और उसके अनन्तर भी गूँजते रहे। सन्तों के पदों में वाह्य वस्तुओं का वर्णन न होता था, आत्मा को अन्दर ढूँढ़ने का ही प्रयत्न उसमें किया गया है। भगवान् के साथ दैन्यभाव का विशेष सम्बन्ध इन पदों में पाया जाता है, पर इन पदों में केवल प्रभु की महिमा ही गाई गई है।

सूरदास ने जिस पद्धति का अनुसरण किया वह जयदेव व विद्यापति से मेल खाती है। जयदेव ने अपने दृष्टिकोण को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

"यदि हरि स्मरणे सरसं मनः,
यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
सरस-कोमल-कान्त्व पदावली,
भज तदा जयदेव सरस्वतीम्॥"

जयदेव के इस आदर्श को लेकर ही मैथिल कोकिल विद्यापति ने कृष्ण काव्य लिखा उसमें संगीतमयता भरी पड़ी है। यथा—

"नन्दक नन्दन कदम्बक तरुतर
धिरे धिरे मुरली बजाव,
समय संकेत निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव॥"

ये हैं जयदेव व विद्यापति के उदाहरण व आदर्श। सूर ने उनका अनुकरण किया जब हम ऐसा कहते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने उनका अन्धानुकरण किया। उनकी अपनी विशेषता की मुद्रा सूरसागर के प्रत्येक पृष्ठ पर लगी है। जयदेव व विद्यापति से उन्होंने कोमल कान्त पदावली अवश्य ली है पर उसे भी उन्ह

अपने रंग में रँगा है। सूर की रचना में जो व्यंग्य, सजीवता, स्वाभाविकता, चित्रमयता एवं भाव गाम्भीर्य है, वह विद्यापति और जयदेव में कहाँ ? उनका मातृ-हृदय का चित्रण, कृष्ण के बाल स्वरूप का वर्णन एवं यौवन के नाना रूपों का चित्र अन्यत्र ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा।

सूरदास का अधिकांश काव्य कीर्तन के लिये रचा गया है, इसलिये वह मुक्तक गेय पदों में हैं। ये गेय पद विभिन्न राग रागनियों में सधे हैं। गीति काव्य की शैली आत्माभिव्यञ्जन की अतीव उत्कृष्ट शैली है। जिसे भाव की एक-एक शृङ्खला को सुसज्जित गुलदस्ते के रूप में सजाना है, अपनी अनुभूति का अङ्ग-अङ्ग आकर्षक रूप में प्रकट करना है उसके लिये गीति काव्य के अतिरिक्त कोई भी शैली उपादेय नहीं। सूर ने इसी शैली में हरिलीला का गान किया है। इस गायन में कौनसी राग व रागिनी है जिसका उपयोग सूरदास ने न किया होगा। ऐसा कहते हैं कि सूर ने तो ऐसे राग व रागनियों का उपयोग किया है जिनके लक्षण भी अब प्राप्त नहीं हैं। इसीलिये संगीत काव्य की दृष्टि से भी सूर काव्य का अनुपम महत्त्व है। एक विद्वान् ने लिखा है कि "संगीत विषयक ज्ञान की कसौटी पर जब सूर कसे जाते हैं, तब वह बहुत ऊँचे उठ जाते हैं। वास्तव में यदि काव्य और संगीत का सच्चा समन्वय कोई प्रकृत रूप से कर सका है तो वह सूर ही हैं।" इसी सम्बन्ध में सूर व तुलसी की तुलना करते हुए वे ही विद्वान् लिखते हैं—"जहाँ तुलसी की संस्कृत पदावली संगीत के माधुर्य को किन्हीं अंशों में कम कर देती है, वहाँ सूर की प्रकृति रूप से प्रसवित होने वाली शब्द-लहरी स्वाभाविकता, सादगी, अल्हड़पन और प्रसाद को समान रूप से लिये आगे बढ़ती है। तुलसी के अनावश्यक रूप से प्रयुक्त बड़े-बड़े रूपक भी संगीतलहरी में अवरोध उपस्थित करते हैं, पर सूर के रूपक छोटे, आवश्यक फबते हुए, सरल, आकर्षक और संगीत के लिये उपयुक्त हैं। इसलिये तुलसी संगीत का वह माधुर्य न ला सके

ज। उसके लिये आवश्यक है। ऐसा करने में सूर समर्थ हो सके हैं। उन्होंने संगीत की स्वरलहरी को भावुकता, प्रबलता और दक्षता के साथ प्रवाहित किया है। कुछ पदों की गीतात्मका देखिये—

(क) माई, आजु तो बधाई बाजै, मन्दिर महर के।
फूले फिरें गोपी-ग्वाल, ठहर-ठहर के॥
फूली धेनु, फूले धाम, फूली गोपी अंग-अंग।
फिर फूले तरुवर, आनन्द लहर के॥

, (गीत के स्थायी की गति शांत है, अन्तरे की गति तीव्र है। भिन्न चरणों में यति की संख्या व स्थान भेद होने के कारण गीत तल्लीनता को अभिव्यक्त करने के लिये उत्कृष्ट बन पड़ा है)।

(ख) ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन कर लीनें।
जान प्रभात राग पंचम षट् भाल कोस रस भीने॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारँग सुर नट जान।
सुर सावँत झपाली ईमन करत कान्हरौ गान॥

सूर सारावली की इन पक्तियों में संगीतमयता भी है एवं साथ ही राग रागनियों के नाम भी।

भक्ति काल में मीरा ने भी अपने भावों को पदों में ही व्यक्त किया है आधुनिक युग में "प्रसाद" एवं "महादेवी वर्मा" ने भी पदों में पर्याप्त काव्य की रचना की है। प्रसाद जी का एक पद देखिये—

"तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक छिपकर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन, रसकन ढरते॥
हे लाज भरे सौन्दर्य!
बतादो मौन बने रहते हो क्यों?

"तुम्हें बाँध पाती सपनों में" श्रीमती महादेवी की ये पंक्तियाँ तो संगीत के अन्यतम उदाहरण हैं।

इस प्रकार आरम्भ से लेकर आज तक पद-साहित्य का विकास होता चला जा रहा है। पर अब प्रश्न यह है कि इनमें सूर का क्या स्थान है? अगर सारे पद साहित्य का अध्ययन करें तो पता चलता है कि सूरदास का स्थान सब में मूर्द्धन्य है। आचार्य बल्लभ से दीक्षित होने के बाद मानों साक्षात् वीणा-वाणी सरस्वती ही उनकी जिह्वा में आ विराजी थी। उस समय गीतियों की जो अजस्र धारा प्रवाहित हुई उससे सूर का सागर लबालब भर गया। एक या दो अथवा सौ नहीं किन्तु लक्षावधि पदों का निर्माण हिन्दी साहित्य में तो क्या आज तक विश्व-साहित्य में भी कोई नहीं कर सका है। सूर के इसी संगीत ने ब्रजभूमि को वन्दनीय एवं ब्रज-भाषा को वरेण्य बना दिया है। भाषा व संगीत के कारण सूरदास ने जिस गति परम्परा को वृद्धि गत करने में सहयोग दिया है वह अत्यन्त उच्चकोटि का है। वस्तुतः सूर पद साहित्य में अपना सानी नहीं रखते।

प्रश्न २०—सूर की भाषा पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर—किसी भी महाकवि के काव्य की एक विशिष्ट शैली होती है। शैली का सौन्दर्य और महत्त्व बहुत कुछ काव्य की भाषा की समृद्धि पर भी आधारित है। सूरदास के काव्य के मूल्यांकन में उनकी भाषा का भी एक विशेष महत्व है।

सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जो कि हिन्दी का एक विशिष्ट रूप है। यद्यपि सूरदास के पूर्ववर्ती कतिपय कवियों के काव्य में भी ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, तथापि व्यवस्थित और साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण सूरदास को ही ब्रजभाषा का आदि कवि माना गया है। वे ब्रजभाषा के वाल्मिकी कहे जाते हैं। सौरसेनी अपभ्रंश के विकसित रूप में ही ब्रजभाषा का प्रचलन विक्रम की बारहवीं शताब्दी से सूरसेन प्रदेश एवं उसके पार्श्ववर्ती भू-भागों में था। इस बोली में माधुर्य स्वाभाविक रूप से विद्यमान था। अतः तत्कालीन साधु-संतों एवं संगीतज्ञों ने इसे अपनाया।

ब्रजभाषा के माधुर्य के कारण इसे अन्य-ब्रज के इतर—लोगों ने भी इसे ग्रहण किया। सूर से पूर्व-खुसरों, कबीर, नामदेव आदि की भाषा में ब्रजभाषा का रूप दिखाई देता है। किन्तु उन्होंने इसका साहित्यिक रूप न अपनाया, न तो उस ओर उनका ध्यान ही गया। ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने के श्रेय-जैसे हम आरम्भ में भी कह चुके हैं—सूरदास को ही प्राप्त है। सूर के बाद "वार्ता" की ब्रजभाषा भी व्यवस्थित नहीं। यह सूर का ही कार्य है कि उन्होंने इस भाषा को अपनी प्रतिभा-पारस मणि से छूकर कंचन (साहित्यिक) बना दिया।

कोमल पदावली के साथ ही सूर की ब्रजभाषा सानुप्रास, स्वाभाविक, प्रवाहमयी, सजीव व भावों के अनुरूप है। (दृष्टकूटों की क्लिष्टार्थमयी भाषा को सूर की भाषा का मापदण्ड नहीं कहा जा सकता)। उनकी भाषा तो आडम्बर विहीन, व्यावहारिक और अन्तस्तल का चित्रण करने वाली है। एक उदाहरण देखिये—

चलौ किन मानिनि कुंज कुटीर।
तुव बिन कुँवर कोटि बनिता तजि सहत बदन की पीर।
गद्गद् सुर पुलकित विरहानल नैन पिलोकत नीर।
कासि कासि वृषभानु कुमारी बिलपत विपिन अधीर।
मलयज गरल हुतासन मासत शाखा मृग रिपु वीर।
हिय में हरिष प्रेम अति आतुर-चतुर चलहु पिय तीर।

× × ×

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकन संग तबहिं खिजत बल भैया॥

सूरदास की भाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ ही संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द भी प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। सूर ने तत्सम शब्दों का प्रयोग करके इस भाषा को ब्रज का ही नहीं बरन् समस्त भारत की भाषा बना दिया। प्रायः चार सौ वर्षों तक वह कविजनों की कंठ-हार बनी रही। सूर के समस्त साहित्य का

विलोकन करने से ज्ञात होता है कि उनके प्रास शब्दों का विशाल भण्डार था। जिनके कारण वे किसी भी भाव को किसी भी प्रकार से व्यक्त करने में समर्थ थे। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का तो प्रयोग हुआ ही है, इसके अतिरिक्त उसमें खड़ी बोली, पूर्बी, पंजाबी बुन्देली, गुजराती और अरबी फारसी के शब्द भी प्रर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। अरबी फारसी के शब्दों का उन्होंने स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग किया है, क्योंकि मुसलमानों के संसर्ग के कारण उनका प्रचलन यहां हो गया था, अतः उन्होंने उनका वहिष्कार नहीं किया। इन शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा मिश्रित तो होगई पर साथ ही वह बलवती एवं प्रभावशालिनी भी होगई।

संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग सूर ने प्रचुरता से किया है। देखिये—

सुख पर्यङ्क अंक ध्रुव देखियत कुसुम कन्द द्रुम छाये।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दम्पति लगत सुहाये॥

उक्त पक्तियों में पर्य्यङ्क, ध्रुव आदि शब्द संस्कृत के हैं। ब्रज भाषा के ठेठ शब्दों के प्रयोग अगर न हों, तो वह ब्रजभाषा ही क्या? निम्न कुछ शब्द केवल ब्रज में ही प्रयुक्त होते हैं—

दुर = पुरुषों के कान का भूषण; छाक = कलेऊ; मौंड़ा = लड़का; भौंरा चक डोरी = बच्चों के खिलौने; झारी = लोटा, कनियाँ = गोद; अवसेर = देर।

अन्य भाषाओं के शब्द भी देखिये—

पारसी—खसम, जवाब, बकसौ, जहाज, मुहकम, खर्च।
अवधी—खोइस, सोइस, होइस, इहवाँ, मोर, तोर, जिनि।
पंजाबी—प्यारी।
गुजराती—वियो।
बुन्देलखण्डी—गहिवी, सहिवी।
प्राकृत—सायर।

कहीं-कहीं शब्दों को छन्द की गति के अनुसार नियमित करने के लिये तोड़ा मरोड़ा भी गया है। जैसे पङ्क को पङ्ग, नवनीत को नवीन या नौनी, केतु को केत।

सूर की भाषा में प्रवाह भी पाया जाता है। कवि को भावों के लिये शब्द सोचने नहीं पड़ते, वे भावानुकूल स्वतः ही प्रवाहित हो जाते हैं। देखिये—

व्रज के लोग उठे अकुलाई।
ज्वाला देखि अकास बराबरि दसहु दिशा कहुँ पार न पाइ।
अरहरात बनपात गिरत तरु धरणी तरकि तड़ाक सुनाई।
जल बरसत गिरिवर तर बाँचे अब कैसे गिरि होतु सहाई।

सजीवता भाषा का आवश्यक गुण है, और भाषा में सजीवता लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग से आती है। सूरसागर में लोकोक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

(क) कहन लगी अब बढ़ि बढ़ि बात।

(ख) छठि आठें मोहि कान्ह कुँवर सों।

(ग) दाई आगे पेट दुरावति। पाँच की सात लगायो झूँठी।

(घ) विना भीति तुम चित्र लिखत हो।

निम्न शब्द भी दर्शनीय हैं, जिनसें सजीवता के साथ ही चित्रमयता भी है :—

लटकत मुकुट, मटक भौंहनि की, चटकत चलत, मन्द मुसुकात।

उक्त उद्धरणों एवं सूर काव्य के अध्ययन करने से सूर काव्य की भाषा की विशेषतायें इस प्रकार लक्षित होती हैं—

(१) सूरदास की कविता के अधिकांश विषय शृङ्गार एवं वात्सल्य के हैं, अतः उनके काव्य में ओज की अपेक्षा प्रसाद एवं माधुर्य गुण अधिक परिमाण में हैं। इन गुणों के कारण कोमलकान्त पदावली का बाहुल्य उनकी पहली विशेषता है।

(२) उनकी भाषा की दूसरी विशेषता है भावों के अनुकूल शब्दों का प्रयोग जिसके कारण वस्तुचित्र भी पाठकों के सामने आ जाता है।

(३) उनकी भाषा की तीसरी विशेषता है सार्थक शब्द योजना।

(४) भाषा का धारावाही प्रवाह उनकी चौथी विशेषता है, जो कि संगीत के ताल के कारण और भी आनन्ददायिनी हो गई है।

(५) उनकी भाषा की पञ्चम विशेषता यह है कि वह बलवती एवं सजीव है। भावों के अनुरूप विशिष्ट शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को बल एवं सजीवता प्राप्त हुई है।

इसके साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सूर हमारे सामने तीन रूपों में आये हैं। भक्त; कवि एवं कथा गायक। उनकी भाषा इन तीनों रूपों में भी बदलती हुई रूपों में आई है। कथागायक के रूप में उनकी भाषा में वह सौन्दर्य व सौष्ठव नहीं जो भक्त एवं कवि रूप में है। देखिये—

भारत युद्ध जीतत जब भयो।
दुर्योधन अकेल तहँ रह्यो।
अश्वत्थामा तापै जाई।
ऐसी भाँति कह्यो समुझाई।

इस अवतरण में भाषा की दृष्टि से कोई भी काव्यगत विशेषता नहीं। अतः भाषा का यह रूप गौण है। उनकी भाषा का दूसरा रूप वह है जिसमें उनका भक्तहृदय बोलता है, उसी में उनका कवित्त्व भी प्रस्फुटित हुआ है। सूरदास की इस भाषा का रूप उनके विनय के पदों में देखा जा सकता है, किन्तु इससे भी चमत्कारी रूप देखना हो तो वह उनके बाल-कृष्ण के चरित्र वर्णन में देखने को मिलता है। उसमें भी जहाँ प्रेम प्रसंग आता है वहाँ तो चमत्कारिता की पराकाष्ठा होगई है। इस प्रकार की भाषा में काव्य के अंगों का प्रयोग इतनी अधिकता से हुआ है कि सूर की प्रतिभा पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। यह सूर की ही भाषा का गुण है कि एक ही लीलापर अनेक पद होते हुए भी उन से पाठक को अरुचि नहीं होती।

प्रश्न २१—"सूर सूर तुलसी ससी" इस युक्ति की समीक्षा कीजिये।

उत्तर—सूर एवं तुलसी हिन्दी साहित्याकाश के दो परमोज्ज्वल नक्षत्र हैं। इनमें किसका प्रकाश अधिक एवं किसका कम है; यह बतलाना बड़े से बड़े समीक्षक के लिये भी दुष्कर है। इन दोनों महात्माओं की अब तक अनेक विद्वानों ने तुलना की है किसी ने सूर को श्रेष्ठ बताया है किसी ने तुलसी को। ऊपर हमने "सूर सूर तुलसी ससी" दिया है, सम्भवतः जिस विद्वान् ने यह उक्ति प्रचलित की वे सूरदास जी को अधिक महत्व देते हैं, किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि आज तक सभी विद्वानों का कथन विवाद ग्रस्त रहा है, आगे भी रहेगा और है। इस विषय में विभिन्न विद्वानों की सम्मतियां इस प्रकार से हैं। बा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है—

"तुलसी का क्षेत्र सूर की अपेक्षा विस्तृत है। व्यवहार दशाओं की अधिकता तुलसी तथा प्रेम की अधिक विस्तृत व्यञ्जना सूर के काव्य में प्राप्त होती है। पर शुद्ध कवित्त्व की दृष्टि से दोनों का समान अधिकार है। सूरदास के सम्बन्ध में निम्नांकित दोहे को हम अनुचित नहीं समझते—"सूर सूर-तुलसी ससी आदि।"

परन्तु इसी विषय में मिश्र बन्धु लिखते हैं—

"हम लोगों का अब यह मत है कि हिन्दी में तुलसीदास सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। उन्हीं के पीछे सूर का नम्बर आता है। महात्मा सूरदास हिन्दी के वाल्मीकि हैं। वाल्मीकि के समान यह हिन्दी प्राचीन सत्कवि हैं.........।"

सूरदास व तुलसीदास पर सबसे अधिक विवेचन आचार्य शुक्ल ने किया है। उनके विवेचन का सार यह है कि—

(क) तुलसी का ब्रजभाषा और अवधी भाषा दोनों पर समान अधिकार था और उन्होंने जितनी शैलियों की काव्य रचना प्रचलित की उन सब पर उत्कृष्ट रचना की है। यह बात सूर में नहीं। सूर-सागर की पद्धति पर वैसी ही मनोहारिणी और सरस रचना

गीतावली में विद्यमान है। पर रामचरित मानस और कवितावली की शैली की सूर की कोई कृति नहीं है।"

(ख) मनुष्य जीवन की जितनी अधिक दशायें, जितनी अधिक बृत्तियाँ तुलसी ने दिखाई हैं, सूर ने नहीं।

(ग) तुलसी ने चरित्र-चित्रण द्वारा जैसे आदर्श स्थापित किये हैं वैसे सूर ने नहीं।

(घ) तुलसी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है, सूर की एकमुखी।

(ङ) तुलसी में लोक संग्रह व समन्वय का भाव विद्यमान है सूर का ध्यान इस ओर गया ही नहीं। इस प्रकार शुक्ल जी ने तुलसी जी को ही मूर्द्धन्य स्थान दिया है।

हमारी दृष्टि से ये दोनों ही कवि हिन्दी कवियों के मुकुटमणि हैं एवं अपने-अपने क्षेत्रों में एक दूसरे से बढ़ कर हैं। हिन्दी का तीसरा कोई भी कवि इनकी समता नहीं कर सकता।

संस्कृत साहित्य में सूरदास से पूर्व भी कृष्ण साहित्य प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। श्री मद्भागवत, महाभारत, गीतगोविन्द आदि में कृष्ण चरित्र ही है। सूर ने अपने कृष्ण को नया ही रूप दिया। वे भागवत के दुःख मोचक भी नहीं, महाभारत के नीति विशारद भी नहीं, एवं गीत गोविन्द के नटवर भी नहीं। वे तो सूर के नन्दनन्दन, रसिक शिरोमणि हैं। सूर ने अपने काव्य में वात्सल्य व शृङ्गार (वियोग-संयोग) दोनों का जैसा सुन्दर वर्णन किया आज तक वैसा कोई भी नहीं कर सका।

इसी प्रकार गोस्वामी जी से पूर्व भी राम काव्य पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। बाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण एवं रघुवंश ये सभी राम काव्य हैं। किन्तु गोस्वामी जी का दृष्टिकोण उक्त तीनों से भिन्न था। वस्तुतः उन्होंने उक्त तीनों काव्यों की प्रमुख बातों का समावेश मानस में किया। कालिदास का कवित्त्व एवं अध्यात्म रामायण की धार्मिकता का इसमें अद्भुत सम्मिश्रण है। अतः रामायण में भक्ति और कवित्त्व का अपूर्व मणि-काँचन संयोग हुआ है।

पाण्डित्य की दृष्टि से भी दोनों ही महात्मा पूर्ण पण्डित हैं। भारतीय वेदान्त व दर्शन शास्त्रों के दोनों ही विशेषज्ञ थे। दोनों ही भक्ति का निरूपण करना चाहते थे। वेदान्त के तत्व दोनों महाकवियों के काव्यों में विद्यमान हैं, यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि गोस्वामीजी समन्यव वादी थे अतः उनके काव्य में सभी वादों एवं मतमतांतरों का समन्वय है। सूरदासजी को अन्य मतों से कोई अभिप्राय ही नहीं था अतः उन्होंने केवल पुष्टिमार्ग के अनुरूप ही अपने सिद्धान्तों का चित्रण किया। जहाँ तक कविता के भाव तत्त्व व कलातत्त्व का प्रश्न है उसमें भी दोनों समान हैं किसी को भी हम कम नहीं कह सकते, यद्यपि कुछ अलोचकों ने गोस्वामी जी के भावतत्त्व को सूरदासजी के भावतत्त्व से कम बताया है।

तुलसी के काव्य में जीवन की अनेक दशाओं का उल्लेख है। राम पुत्र, भाई, पति, भक्त वत्सल, योद्धा एवं मर्यादा रक्षक हैं। तुलसीजी ने भगवान् राम के मर्यादा स्वरूप को ही लिया है। किन्तु सूरदासजी ने कृष्ण के बाल व किशोर रूप को ही लिया है। उसमें जीवन की विभिन्नता नहीं दर्शायी गई। कृष्ण चरित की एक विशेषता भी है कि वे हमारे सामने अलौकिक रूप में आते हैं। अनेक सम्बद्धों से आबद्ध होने पर भी वे उनसे अलिप्त रहते हैं। इसी कारण उनका चरित लौकिक सम्बन्धों में विकसित नहीं हुआ। मानस के राम लौकिककारी हैं अतः उनका लौकिक जीवन भी विकसित हो पाया है। यहाँ तक अपने उद्देश्य में दोनों कवि पूर्ण सफल हुए हैं।

जहाँ तक प्रबन्धात्मकता का प्रश्न है वहाँ अवश्य दोनों की समता नहीं हो सकती सूरदासजी ने गीति काव्य की रचना की है। उसमें उन्होंने कृष्ण के एक ही स्वरूप को प्रमुख रूप से चित्रित किया है। यद्यपि कृष्ण के जीवन की अन्य घटनायें भी उसमें हैं पर वे तारतम्यरहित हैं। तुलसीदासजी ने भी गीति काव्य पर्याप्त लिखा है। अतः इस क्षेत्र में दोनों की समता करता है। पर जहाँ तक गीति की सुन्दरता का प्रश्न है सूरदास की गीति के आगे तुलसी की गीति

नीरस है। भाव सौन्दर्य के जो उदाहरण भ्रमर गीत व बालकृष्ण में हैं तुलसी की गीतावली में नहीं।

वात्सल्य व शृङ्गार का निरूपण दोनों ही कवियों ने किया है, पर देखने पर ज्ञात होता है कि इसमें जितनी अधिक सफलता सूर को मिली उतनी तुलसी को नहीं। जो मनोहारिणी बाल क्रीड़ा व वचन वक्रता सूरदास में है वह तुलसी में कहाँ ?

पर कहीं-कहीं तो दोनों की रचनाओं में अद्भुत साम्य है। तुलसी सूर से प्रभावित भी हैं। उदाहरण के लिये मानस का यह परम सुन्दर प्रसंग देखिये। बनवास के अवसर पर जब सीता अपने पति व देवर के साथ चली जा रही थीं, उस समय ग्रामीण स्त्रियों ने सीता से उन पुरुषों का परिचय जानना चाहा, सीता ने जिस ढंग से उत्तर दिया उससे पढ़कर कोई भी सहृदय आनन्द विभोर हुए बिना न रहेगा। ये प्रसंग भी सूर काव्य से प्रभावित है। "मानस" का प्रसंग देखिये—

कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचति वर वरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नैनी। बोली मधुर वचन सिक बैनी॥
सहज सुभाव सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनि बिधु अँचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निजपति कहेउ तिनहिं सिय सैननि॥

यही प्रसंग "कवितावली" में इस प्रकार है—

"पूछति ग्राम बधू सियसौं" कहौ साँवरे से सखि ! रावरे को हैं ?"
सुनि सुन्दर बानी सुधा रस सानी; सयानि है जानकि जानि भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें, समझाई कछू मुसुकाइ चली॥

सूर काव्य में यही प्रसंग इस प्रकार मिलता है—

कहि धौं सखी ! बटोही को हैं ?
अद्भुत बधू लिये संग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं॥

यहि में को पति त्रिया तिहारे, पुरतिय पूछहिं धाई।
राजिव नैन मैन की मूरति, सैननि दियो बताई॥

सूर काव्य का और भी स्पष्ट प्रभाव तुलसीदास की "गीताबली" पर दीखता है। देखिये—

जसोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं, दुलराई, मल्हावैं, जोइ सोइ कछु गावैं॥
—सूरदास

पालने रघुपतिहिं झुलावैं॥
लै-लै नाम सप्रेम सरस स्वर, कौसल्या कल कीरति गावैं।
—तुलसीदास

इस प्रकार हम तुलसीदास व सूरदास में कई समानतायें देख सकते हैं। तुलसीदास जी के काव्य में महान गुण हैं पर सूरदास जी ने जिस सीमित क्षेत्र में ही सवा लक्ष पद रचकर अपना अपूर्व कौशल दिखलाया है, निश्चित ही उसमें तुलसी उनकी समता नहीं कर सकते। इन तथ्यों को देखते हुए "सूर-सूर तुलसी ससी" की सत्यता पर आक्षेप नहीं किया जा सकता।

प्रश्न २२—सूरदास की विनय भावना का परिचय दीजिये।

उत्तर—महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट होने के पूर्व सूर भगवद् भक्ति विषयक पद बना कर गाया करते थे। दास्य, दैन्य, भर्त्सना, विचारणा, पश्चाताप आदि भावों से सम्बन्ध रखने वाले विनय के पद उसी समय के लिखे हुए हैं।

विनय के लिये एक ऐसे आधार की आवश्यकता है, जिसके लिये विनय की जाये। सूरदास ने प्रारम्भ में ही इस विषय में अपना मत स्थिर कर लिया है। उनके विनय का आलम्बन निर्गुण का सगुण अवतार (कृष्ण) हैं। "अविगत" निर्गुण के प्रति विनय की भावना रहस्यमूलक, असष्ट और भ्रामक हो सकती है; अतः सूर ने अपना आधार "सगुन" माना—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै॥
परम स्वाद सब ही जुनिरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर, जो जानै जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातैं सूर सगुन लीला पद गावै॥

सूर के "सगुन" हैं "वासुदेव" "जदुनाथ गुसाईं।"
वासुदेव की बड़ी बड़ाई।

× × ×

बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं।

× × ×

वेद उपनिषद जासु कौं निरगुन ही बतावै।
सोई सगुन सूर नंद की दाँवरि बँधावै।

सूर को यह निश्चय है कि निरगुन व सगुन एक ही हैं। किसी रण से ही "निरगुन" "सगुन" अवतार लेता है। उसमें दो रण हैं—

(क) ब्रह्म की लीला, (ख) भक्तों को आनन्द देना एवं भक्त के खों को दूर करना।

पहले वे भगवान् के स्वभाव का वर्णन करते हैं, क्योंकि भक्त को सी स्वभाव का आश्रय लेना है। भगवान् के स्वभाव के अंग भक्त सलता, भक्त की धृष्टता सहना, भक्त का कष्ट हरण, शरणागत सलता, दीन ग्राहकता, गाढ़े दिन की मित्रता और अभय दान हैं। गवान् के इसी स्वभाव के विश्वास को लेकर ही आगे बढ़ता है। सांसारिक वैभव को त्याग भगवान् की सम्पत्ति में ही अपने धनी मानता है—

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ पूरन, सुख निधान जाकी मौज घनी॥

आगे वह अपने को महाराजाओं से भी बड़ा मानता है, भगवान् ऐश्वर्य ही उसका ऐश्वर्य है—

हरि के जन की अति ठकुराई।
महाराज दिविराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई ॥

यहां तक मन को विश्वस्त करने के बाद भक्त विनय की भू
में उतरता है। वह पहले भगवान् से माया और तृष्णा के परिहार
प्रार्थना करता है। क्योंकि भक्ति के ये ही दो प्रबल शत्रु हैं। सूर
माया का वर्णन कई रूपकों में किया है—

माया नटी लकुटी कर लीन्हें

× × ×

माधौ जू यह मेरी इकगाई

इस माया नटी के काम हैं भगवान् से विमुखता उत्पन्न कर
मन में अभिलाषाओं की तरंग उठाकर मिथ्या से परिचय कर
और उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करना। यही माया का भ्र
और यही भ्रम बाद में हिंसा, मद, आशा, निद्रा, काम, तृ
आदि का जन्म होता है। आशा का वर्णन सूर ने निम्न प्रका
किया है—

यह आशा पापिनी यहै।
तजि सेवा वैकुण्ठ नाथ की, नीज नरनि के संग र
जिनको मुख देखन दुख उपजत, तिनको राजा राम क
धन-मद-मूठनि, अभिमाननि-मिति लोभ लिये दुर्वचन स

किन्तु भक्त का अंतिम आश्रय जहाँ भगवान् हैं वहाँ उसे अ
ओर से भी प्रयत्नशील होना पड़ता है। भक्त का मुख्य प्रयत्न ह
है—आत्म शुद्धि एवं आत्म प्रबोध :—

रेमन छाँड़ि विषय को रचिबौ।

× × × ×

रेमन अजहूँ क्यों न सम्हारै।

कवि अपने मन को समझाता है—

रें मन, आपु को पहिचानि।
सब जनमतें भ्रमत खोयो, अजहुँ तौ कछु जानि।

भगवान् की कृपा से ही मन स्वच्छ होता है, पर भक्त को भी साधना करनी ही चाहिये। वह साधनायें हैं—

(क) नाम स्मरण (ख) भगवत् कथागान (ग) भगवत्स्वरूप तन। इनके अतिरिक्त गुरुभक्ति, दैन्य व सत्संग भी चाहिये। और के साथ ही चाहिये आत्म प्रवादन—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिहिं तन दियो ताहि विसारयों ऐसो नौन हरामी।
× × × ×
माधौ जू, हौं पतित सिरोमनि।
और न कोई लायक देखौ, सत सत अघ प्रति रोमनि।

कभी भक्त भगवान् की शरण में आजाता है—

अबहौं हरि सरनागति आयौ।

वह भगवान् की कृपा के प्रति भी आस्था रखता है—

भक्ति बिना जौ कृपा न करते तो हौं आस न करतौ।
बहुति पतित उद्धार किये तुम, हौं तिनको अनुसरतौ॥

इन्हीं भावनाओं के प्रति भक्त ढीठ हो जाता है और इसी ढीठता बल पर वह कहता है—

जो पै तुम ही विरद विसारौ।
तो कहौ कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ।
× × × ×
दीनानाथ अब बारि तिहारी।

यही नहीं अन्त म भक्त भगवान् के उसी कृपालु स्वभाव से साहित होकर कहता है—

आजु हौं एक एक करि टरिहौं।
कै तुमहीं कै हमहीं, माधौ, अपनि भरोसै लरिहौं।

यही है सूर की विनय भावना में कार्य करने वाला मनोविज्ञान, सभी स्थानों पर भगवान् से मुक्ति मांगते हैं। इसके लिये वे अपनी ततावस्था और भगवानकी पतित उद्धारन बानि का आश्रय लेते। सूर की भक्ति में पतित भावना इतनी अधिक है कि वह उनकी

भक्ति को कहीं-कहीं विचित्र रूप भी दे देती है। इस अवस्था का चित्र उन्होंने रूपकों के सहारे किया है—

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना, कंठ बिषय की माल ॥

× × ×

अब कै राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया पारधि साधे बान ॥
ताकैं मैं भाज्यौ चाहत ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुःख भयौ आनि यह कौन उबारे प्रान ॥
सुमिरत ही हिअ डस्यौ पारधी कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहि जय-जय कृपानिधान ॥

सूर की यह भक्ति भावना जिस कृष्ण रूप के प्रति प्रकट हुई वह निर्गुण से कम "अविगत" नहीं किन्तु सगुण रूप होने के कारण उसकी सुन्दरता भक्त के मन में समा जाती है, जिससे वह कुछ तृप्त अवश्य हो जाता है। वस्तुतः सूर का विषय विनय नहीं, सगुण सौंदर्य का अवलोकन, आस्वादन और ध्यान ही उसका लक्ष्य है।

प्रश्न २३—निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये—

वेणु, गोपियाँ, माया, पुष्टिमार्ग, राधा एवं रास।

उत्तर— **वेणु (मुरली)**

श्री कृष्ण की मुरली उन पर शासन करती है। गोपियों ने इस विषय को लेकर कई उपालम्भ दिये हैं। सूर ने कई रूपों में मुरली का वर्णन किया है एवं प्रत्येक रूप में उनकी रागमयी वृत्ति वंशी ध्वनि के साथ तदाकार हो गई है। अद्भुत है यह मुरली जिसको सुनते ही सिद्धों की समाधि भी भंग हो जाती है। सूरसागर में मुरली के प्रभाव के सन्बन्ध में प्रथम पद इस प्रकार है—

मेरे सांवरे जब मुरली अधर धरी,
सुनि ध्वनि सिद्ध समाधि टरी।

सुनि थके देव विमान। सुर वधू चित्र समान।
ग्रह नक्षत्र तजत न रास। यही बँधे ध्वनि पास।
सुनि आनँद उमंग भरे। जल-थल अचल टरे।
चर-अचर गति विपरीत। सुनि वेनु कल्पित गीत।
झरना झरत पाखान। गन्धर्व मोहें गान।
सुनि खग मृग मौन धरे। फल तृण सुधि बिसरे।
सुनि धेनु थकित रहे। तृन दंत नाहिं गहे।
बछवा न पीवें छीर। पंछी न मन में धीर।
द्रुम बेलि चपल भये। सुनि पल्लव प्रकट नये।
ज विटप चञ्चल पात। ते निकट को अकुलात।
अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात।
सुनि चंचल पवन थके। सरिता जल चलि न सके।
सुनि धुनि चलीं ब्रज नारि। सुत देह गेह बिसारि।
सुनि थकित भयो समीर। बहै उलटि यमुना नीर।

यह है मुरली का व्यापक प्रभाव क्या जड़, क्या चेतन सब के सब उसी के वश में हैं।

अब प्रश्न यह है कि मुरली की यह ध्वनि अध्यात्म क्षेत्र में क्या है। कुछ विद्वानों ने इसे शब्द ब्रह्म का नाम दिया है। जो ब्रह्म सर्व-व्यापक है, उसकी वाणी भी सर्व व्यापक है। अतः वेणु ध्वनि परब्रह्म का शब्दरूप है। अन्य विद्वानों ने इसे नाम लीला का रूप दिया है। भक्त नाम का जाप करते हुए जिस ध्वनि को अपने अन्तस्तल में श्रवण करता है, वही तो वंशी की ध्वनि है। कहीं-कहीं वंशी को योगमाया का रूप भी माना गया है जो प्रभु की अपरा शक्ति की वाचक है। श्रेय और प्रेय दोनों मार्ग यहीं से आरम्भ होते हैं। श्रेय को उपनिषदों ने "परा विद्या" और "प्रेय" को "अपरा विद्या" कह कर पुकारा है। वैष्णव आचार्यों का कथन है कि वंशी निनाद के सम्मुख अभ्युदय और निश्रेयस दोनों प्रकार का सुख फीका है।

वेणु में तीन अक्षर हैं :—व + इ + णु। "व" ब्रह्म सुख का द्योतक

है। "इ" सांसारिक सुख को प्रकट करती है। इन दोनों प्रकार के सुखों को जो "णु" अर्थात् मात करने वाली है, वह है वेणु। आचार्य महाप्रभु ने इसे "ब्रह्मा-नन्दादपि अधिकानन्द सार भूता" अर्थात् मुरली की ध्वनि ब्रह्म के आनन्द से भी अधिक आनन्द दायिनी है। इतना ही नहीं उन्होंने इसे श्रुति (शब्द) कहा है। वस्तुतः शब्द ब्रह्म ही परब्रह्म है।

सूर ने इस मुरली पर बहुत कुछ लिखा है।

वंशी वन कान्ह बजावत
आइ सुनों श्रवणनि मधुरे सुर राग रागनी ल्यावत।
सुर श्रति तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागन-आवत॥
जनु युग जुरि वर बेष सजल मथि, वदन ययोधि अमृत उपजावत।

गोपियाँ

सूरसागर प्रधान रूप से हरिलीला काव्य है। हरिलीला गोप-गोपियों की लीला है। राधा-कृष्ण भी गोपी-गोप हैं श्री कृष्ण का अवतार गोप रूप में ही हुआ था। सूरसागर में प्रभु के इसी अवतारी रूप की लीलाएँ वर्णन की गई हैं।

अब प्रश्न है कि यदि कृष्ण ईश्वर हैं—सूर ने कृष्ण को परब्रह्म माना है—तो गोपियाँ क्या हैं? गोपियाँ उसी ब्रह्म की शक्ति हैं। शक्ति अपने आश्रय से कभी पृथक नहीं होती। अतः कृष्ण और गोपियों में कोई अन्तर नहीं। एक गुणी है दूसरा गुण। सूर ने लिखा है—

गोपी-ग्वाल कान्ह दुइ नाहीं ये कहुँ नेक न न्यारे।

अध्यात्मपक्ष में कृष्ण आत्मा हैं तो गोपियाँ इस आत्मा की वृत्तियाँ हैं, किन्तु आत्मतत्व के एक होते हुए भी वृत्तियाँ अनेक और भिन्न रूपा हैं। इसीलिये भागवत व सूरसागर में उनके कई रूप लक्षित होते हैं। भागवत् में लिखा है—

"गोप जाती प्रतिच्छना देवा गोपाल रूपिण:" अर्थात् गोपी व गोपों के रूप में देवता ही प्रकट हुए हैं।

सूरसागर में भी लिखा है—

यह बानी कहि सूर सुरन को अब कृष्ण अवतार।
कह्यो सबनि ब्रज जन्म लेहु सँग हमरे करहु विहार।

किन्तु भगवान् की प्रकृति स्वरूपा तथा देव विग्रही गोपयों के अतिरिक्त कुछ गोपियाँ ऐसी भी थीं जो पूर्व जन्म में देवकन्याओं, श्रुतियों, तपस्वी ऋषियों या भक्तों के रूप में रह चुकी थीं और भगवान् के साथ उनकी सेवा करने के लिये अवतीर्ण होना चाहती थीं। उसमें बहुतों ने गोपियों के रूप में जन्म लिया। पद्मपुराण में लिखा है कि उग्र तपानाम के मुनि सुनन्द नाम के गोप की कन्या सुनन्दा के रूप में अवतीर्ण हुए।

सूर ने एक स्थान पर गोपियों को वैदिक ऋचाओं का अवतार कहा है :--

ब्रज सुन्दरि नहिं नारि, ऋचा श्रुति की सब आहिं।
मैं (ब्रह्मा) अरु शिव पुनि लक्ष्मी तिन सम कोऊ नाहिं।

वल्लभाचार्य जी ने एक स्थान पर गोपियों को लक्ष्मी का अंश और उसके साथ विचरण करने वाली कहा है।

इस प्रकार गोपियाँ भिन्न-भिन्न रूपा थीं। इनमें कुछ देवकन्यायें थीं, कुछ ऋषि थे, कुछ ऋत्रायें थीं और कुछ स्वयं प्रभु की अन्तरङ्ग शक्ति थीं। इन गोपियों की संख्या सोलह सहस्र कही गई है।

माया

(यद्यपि सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों में हम माया के स्वरूप का वर्णन कर चुके हैं, तो भी संक्षेप में यहाँ पर बतायेंगे ही।)

आचार्य शङ्कर ने माया को अनिर्वचनीय शक्ति कहा है। इसी से अभिभूत ब्रह्म का नाम ईश्वर है। ईश्वर ही सृष्टि की रचना करता है। ब्रह्म निर्गुण एवं तटस्थ है। अतः इस संसार के मूल में भी माया ही है। वैष्णव सम्प्रदाय में भी माया है, परन्तु वह सांख्य की प्रकृति के समान है। यह माया त्रिगुणात्मिका है। इसी से इस त्रिगुणात्मक

(सत्व, रज, तम) जगत की उत्पत्ति हुई है। सूर ने भी माया का यही स्वरूप स्वीकार किया है। देखिये—

माया का त्रिगुणातम जानों। सत-रज-तम ताको गुण मानों॥
जड़ स्वरूप सब माया जानों। ऐसो ज्ञान हृदय में आनों॥

अत: सूरसागर में माया जड़ प्रकृति का ही रूप है। यह माया भगवान के अधीन है, उसकी दासी है—

सो हरि, माया जा बस माँहीं।
× × × ×
परम पुरुष अवतार माया जिसकी है दासी।

माया वह ग्रन्थि है, जो जीव को गृह, धन, पुत्र, कलत्र आदि के प्रेम में बाँध देती है। सूर ने माया को मोहिनी, भुजङ्गिनी, नटनी आदि कहा है। देखिये—

माया नटिनि लकुटि कर लीन्हें, कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लैं डोलति, नाना स्वांग करावै॥
× × × ×
माया विषय भुजँगिनी को विष उतरयौ नाहिंन तोई।

इसी माया को सूर ने अविद्या और तृष्णा कहा है—

माधव जू मेरी इक गाई।
अब आजु तैं आप आगे, ले आइये चराई॥
× × × ×
माधव जू नेंकु हटकौ गाई।

यह माया असत है, इससे बना संसार भी असत है।

पुष्टिमार्ग

आचार्य बल्लभ के नित्याचार में मङ्गलाचार, भगवान् का शृङ्गार, राजभोग, संध्या, आरती आदि एवं नैमित्तिकाचार में हिंडोला, बसन्त, फाग आदि की प्रधानता थी। सूर ने इन सभी पर पद रचना की है। उन्होंने मानव जीवन का उद्देश्य भगवान् का स्मरण करना ही बताया है। हरि नाम वह नौका है जिस पर चढ़ कर भक्त भव-सागर से पार हो जाता है।

भागवत् में वर्णित सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मनवन्तर, ईशानु कथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दस विषयों में एक पोषण भी है। आचार्य महाप्रभु ने इसी शब्द से भगवद्भक्ति को पुष्टिमार्ग नाम दिया है। पुष्टिमार्ग में भगवान् के अनुग्रह पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। वह अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करता है। जिस पर भगवान् की कृपा नहीं वह कुलीन होते हुए भी अकुलीन है। और जिस पर भगवान् की कृपा है वही कुलीन व सुन्दर है। देखिये—

जा पर दीनानाथ ढरें।
सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ जा पर कृपा करें॥
राजा कौन बड़ौ रावण तें गर्वहि गर्व गरैं।
राँकव कौन सुदामा हूँ तें आपु समान करैं॥
रूपव कौन अधिक सीता तें जन्म वियोग भरैं।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तें हरि पति पाइ बरैं॥
योगी कौन बड़ौ शङ्कर ते ताको काम छरैं।
कौन विरक्त अधिक नारद सों निशिदिन भ्रमत फिरैं॥
अधम जु कौन अजामिल हू तें यम तहँ जात डरैं।
सूरदास भगवन्त भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरैं॥

यह है भगवान् के अनुग्रह का महत्त्व। सूरदास तो यहाँ तक कहते हैं कि—

सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेंक ढरैं॥

भगवत्कृपा की प्राप्ति के लिये पुष्टिमार्ग में ज्ञान, योग, कर्म यहाँ तक कि उपासना भी निरर्थक समझी जाती है सूरदास कहते हैं—

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो॥

बल्लभाचार्य ने पुष्टि चार प्रकार की बताई है—(१) प्रवाह पुष्टि, (२) मर्यादा पुष्टि, (३) पुष्टि पुष्टि और (४) शुद्ध पुष्टि।

प्रवाह पुष्टि के अनुसार भक्त संसार में रहता हुआ भी श्रीकृष्ण की भक्ति करता है। मर्यादा पुष्टि के अनुसार भक्त संसार के समस्त

सुखों से अपना हाथ खींच लेता है और कृष्ण के गुणगान एवं कीर्तन द्वारा भक्ति करता है। पुष्टि में भगवान का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है किन्तु साथ ही भक्त की साधना भी बनी रहती है। शुद्ध पुष्टि में भक्त पूर्णतः भगवान् पर आश्रित हो जाता है। इस अनुग्रह के प्राप्त हो जाने पर भक्त के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति इतनी अनुभूति हो जाती है कि वह भगवान् की लीलाओं से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उसका हृदय श्रीकृष्ण की लीला भूमि बन जाता है। वस्तुतः बल्लभाचार्य इसी भक्ति को चाहते थे, क्योंकि यही सर्वश्रेष्ठ है। वह वात्सल्यासक्ति, सख्यासक्ति, कांतासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति एवं अन्त में परम विरहासक्ति को प्राप्त होता है तथा शरीर छोड़ने पर वह गोलोक वास करता है।

इन आसक्तियों के रूप देखिये—

वात्सल्यासक्ति—जेंवत स्याम नन्द की कनियाँ।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नन्द रनियाँ।

सख्यासक्ति—मोहि प्रभु तुमसों होड़ पड़ी!
ना जानौं करिहौ जु कहा तुम नागर नवल हरी।

कान्तासक्ति—कहा करौं पग चलत न घर को।
नैन विमुख जन देखे जात न लुब्धे असन अधर को।

आत्मनिवेदनासक्ति—अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना कंठ विषय की माल।

तन्मयासक्ति—उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसे हि निकसत नाहीं ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े।

परमविरहासक्ति— बिन गोपाल बैरिन भई कुजैं।
तब ये लता लगति अति शीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।

एक प्रकार से भागवत के गोप व गोपी भक्त के रूपक हैं और भक्त

की तरह ही भगवान् की प्राप्ति के लिये उन्हें आसक्ति की उक्त सभी दशाओं से गुजरना पड़ता है।

राधा

सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों के वर्णन में हमने राधा का उल्लेख किया है वहाँ उसे भगवान् की शक्ति कहा है। सूर ने राधा का निम्नलिखित रूप में अनुभव किया है—

नीलाम्बर पहिरे तनु भामिनि, जनु घन में दमकति है दामिनी।
शेष महेश लोकेश शुकादिक नारदादि मुनि की है स्वामिनि॥

जैसे गुण, गुणी से पृथक् नहीं होता, शक्ति अपने आश्रय से अलग नहीं होती, उसी प्रकार राधा कृष्ण से भिन्न नहीं। दोनों शाश्वत रूप से एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं—

तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि श्याम को अति आनन्द भई।
जन्म-जन्म युग-युग यह लीला प्यारी जानि लई।

किन्तु काव्य के भक्ति पक्ष को देखते हुए राधा का अन्य प्रतीकार्य भी है। राधा अनुग्रह प्राप्त भक्त का प्रतीक है जो आसक्ति की अनेक दशाओं को प्राप्त होता हुआ परम विरहासक्त हो जाता है। उस समय वह इन्द्रियों के विषय से ऊपर उठ जाता है, एवं उसका आस्तित्त्व केवल "विरह की पीर" मात्र रह जाता है। सूर ने कहा है—

सोरह सहस पीर तन एकै।
राधा जिव सब देह।

वैष्णव-कृष्ण भक्त का लक्ष्य यही था कि वह कृष्ण की अन्यतम गोपी बन जाय। भागवत में इस अन्यतम गोपी (राधा) का उल्लेख है। सूरदास ने राधा को इस गोपी का अन्यतम स्थान दिया है और उसी में भक्ति की पूर्णता की कल्पना की। इस राधा की देह में सोलह हजार देहों की पीर थी तभी तो वह कृष्ण को प्राप्त कर सकी। भक्त भी विरहासक्ति की इसी उच्चतम दशा को प्राप्त करना चाहता

था। यही राधा का अन्य प्रतीकार्थ है; पहला (शक्ति) का स्वरूप तो सर्व मान्य है ही।

रास

रास कृष्णलीला का मुख्य अंग है। रास शब्द रस से बना है। "रसो वै सः" अर्थात् भगवान् स्वयं रस-रूप हैं; आनन्दस्वरूप हैं। उपनिषदों में भी कहा गया है कि आनन्दस्वरूप ईश्वर से समस्त प्राणी प्रकट हुए हैं। रस रूप ब्रह्म एक केन्द्र है और ब्रह्माणु का यह चक्र उसकी परिधि है, जिसे उस प्रभु की लीला कहा जाता है। वैष्णवों की रासलीला भी इसी आन्नद के अनुभव का नाम है।

वैष्णव भक्तों ने रासलीला को वैज्ञानिक रूप दिया है। इन विद्वानों की सम्मति में वाह्य जगत् में एक आकर्षण का नियम है। इस अनन्त आकाश में अनेक सूर्य हैं। एक-एक सूर्य के साथ अनेक ग्रह-उपग्रह लगे हुए हैं। सूर्य केन्द्रवर्ती है और समस्त ग्रह-उपग्रह उसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। आकर्षण की शक्ति से ही ये सब परस्पर सम्बद्ध हैं। इसी प्रकार रासलीला में कृष्ण केन्द्रस्थ सूर्य हैं। राधा तथा अन्य गोपियाँ ग्रह तथा उपग्रहों के रूप में हैं।

कुछ विद्वानों ने रासलीला को शाश्वत नृत्य के रूप में वर्णित किया है। इसी को वे शिव का नृत्य कहते हैं शिव के पदतल की सम और विषय गति लास्य एवं ताण्डव नृत्य को जन्म देती है। नृत्य का यही शाश्वत रूप रासलीला द्वारा प्रकट किया गया है।

एक अन्य विचार के अनुसार यह रासलीला शुद्ध अध्यात्म पक्ष की घटना है। इस पक्ष में श्रीकृष्ण ब्रह्म हैं तथा राधा एवं गोपियाँ अनेक जीव। बृन्दावन सहस्र-दल कमल है। यहीं तो आत्मा-परमात्मा का संयोग होता है। किन्तु वैष्णव विचारों के अनुकूल आत्मा और परमात्मा मोक्ष में भी भिन्न-भिन्न रहते हैं। मुक्त जीव परमात्मा के साथ क्रीड़ा करते हैं; उसकी लीला में भाग लेते हैं। गोपियाँ भी रासलीला में कृष्ण के साथ खेल खेलती हैं। इन सभी

विचारों से यही प्रतीत होता है कि रासलीला एक प्रकार का रूपक है।

थोड़ा सा रास वर्णन देखिये। रास आरम्भ हुई कितना सुन्दर समय है यह देखिये —

आजु निशि शोभित शरद सुहाई।
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन बहै रोम-रोम सुखदाई॥
यमुना-पुलिन पुनीत परम रुचि-रुचि मण्डली बनाई।
राधा बाम अंग पर कर धरि मध्यहिं कुँवर कन्हाई॥

खूब रास रची। शिव, शारदा, नारद आदि भी इस रास को देखने आते हैं। रास जब अपनी चरम-सीमा पर पहुंचती है तो सोलह सहस्त्र गोपियाँ द्रुत गति से कृष्ण के साथ नृत्य करती दिखाई देती हैं। एक-एक गोपी में कृष्ण व कृष्ण में एक-एक गोपी समाई हुई है। रास का इतना सुन्दर दृश्य। सूर तो चाहते हैं कि निरन्तर मैं इस दृश्य को देखता ही रहूँ। इस रास के वश में सुर-नर-मुनि, नक्षत्र-चन्द्रमा आदि हो गये। इस अलौकिक रासलीला का वर्णन कौन कर सकता है? जो इसका वर्णन कर सके वह वन्दनीय है—

रास रसलीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै सुनै मुख स्रवननि तिन चरननि सिर नाऊँ।

एवं

रास रस रीति नहिं बरनि आवैं।
कहां वैसी बुद्धि, कहां वह मन लहों कहां इह चित्त जिय भ्रम भुलावैं।

यह रासलीला विश्व की विराट कार्य प्रणाली का मधुर आभास मात्र है। यह तो शाश्वत है। सूरदास ने कहा है।

नित्य धाम वृन्दावन श्याम।
नित्य रूप राधा ब्रज बाम॥
नित्य रास नित्य जल विहार। नित्यमान खंडिताभिसार।
ब्रह्म रूप ऐई करतार। करन हार त्रिभुवन संसार।
नित्य कुँज नित्य सुख हिंडोर। नित्यहि त्रिविध समीर झकोर।

रास की इस नित्यता को ही सूर ने भगवान् की शाश्वत लीला कहा है। आचार्य महाप्रभु ने सूर को इसी शाश्वत लीला के दर्शन कराये थे।

प्रश्न २४—हरिलीला क्या है? इसकी तात्त्विक मीमांसा किजिये।

उत्तर—शुद्धाद्वैत के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म में अनन्त शक्तियाँ विद्यमान हैं। यह सभी शक्तियाँ सर्वदा भगवान् के अधीन रहती हैं। जब परब्रह्म बाह्य रूप लीला करते हैं, तो उनकी अनन्त शक्तियाँ भी संसार में आकर अनेक रूप गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं। उन शक्तियों में श्रिया, पुष्टि, गिरा आदि द्वादश शक्तियां मुख्य हैं। ये ही शक्तियां श्री स्वामिनी, चन्द्रावली, राधा और यमुना आदि नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही नित्य-स्थित रहती हैं। इन्हीं बारह शक्तियों से पुनः अनन्त भाव प्रकट होते हैं, जो अनेक सखी-सहचरी रूप में उसके साथ रहती हैं। इन्हीं शक्तियों के साथ क्रीडा करने के लिये पुरुषोत्तम अपने में से श्री वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना, श्री गोकुल, पशु, पक्षी और वृक्षादिक को भी प्रकट करते हैं। ये सब ब्रह्म के आधिदैविक ऐश्वर्य रूप होने से आनन्दमय चैतन्य रूप हैं, फिर भी कृष्ण लीला के हेतु इन्होंने जड़त्व अपनाया है।

पुरुषोत्तम के नित्य होने से इनकी लीलाएँ भी नित्य एवं शाश्वत हैं। रास के प्रकरण में हम यह बता चुके हैं।

जहाँ वृन्दावन आदि अजर जहाँ कुँज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिय प्रियतम दोउ-निगम भृङ्ग गुजार॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जंहनीर।
सारस-हंस-चकोर-मोर-खग-कूजत कोकिल कीर॥
जहां गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य विराजत निसिदिन करत बिहार॥

अपनी इस आनन्दमयी नित्य लीला का दर्शन या ज्ञान अन्य को भी हो, इस प्रकार पुरुषोत्तम की इच्छा हुई तो वेद की श्रुतियों

(ऋचाओं) की प्रार्थना से उन्हें पुरुषोत्तम के दर्शन हुए। उन्होंने पुरुषोत्तम से प्रार्थना की—

"श्रुतिन कह्यों कर जोरि देव तुम।
नो नारायण आदि रूप तुम्हरो सु लख्यों हम।
निरगुण रहत जु निज स्वरूप लटको न ताको एव।
मन बानी ते अगम अगोचर दिख राबहु सो देव।
निरखि सु छवि सब तकि रहे तब बोले यदुनाथ।
जो मन इच्छा होइ कहो सो मोंहि कृपावर।
श्रतिन कह्यो है गोपिका केलिकरै तुम संग।
एव मस्तु निज मुख कह्यो.................."
सो श्रुति रूप होय ब्रज मण्डल कीन्हों रास विहार।
नवल कुंज में ओंस बाहु धरि कीन्हीं केलि अपार॥

भगवान् ने श्रुतियों की प्रार्थना पर उन्हें वरदान दिया। वरदान को पूर्ण करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुए एवं श्रुतियां ब्रज-गोपियों के रूप में। पुरुषोत्तम के आविर्भाव के साथ ही उनका समस्त लीला-परिकर एवं लीला स्थान भी ब्रज की गोपियों और गोवर्द्धन आदि स्थानों के रूप में, भूतल में प्रकट हुए। साक्षात् गोलोक गोकुल में प्रविष्ट हुआ। गोवर्धन ने ब्रज के गोवर्धन में प्रवेश किया एवं बृन्दावन ने बृन्दावन में। इस प्रकार समस्त ब्रज तद्रूप हो गया। श्री कृष्ण और उनका धर्म नित्य होने से उनका यह अवतार और अवतार लीला भी नित्य व शाश्वत हुई। पुरुषोत्तम की मूल लीला व अवतार लीला का नित्य सम्बन्ध है।

सूर सागर में भगवान् की दो प्रकार की लीलाओं का वर्णन है। (१) अलौकिक, (२) लौकिक। अलौकिक लीलाओं में, पूतना बध, कागासुर बध, शकटासुर बध, तृणावर्त्त बध आदि असुर बध से सम्बन्ध रखने वाली लीलाएँ वर्णित हैं। लौकिक लीलाओं में चीरहरण लीला, पनघट लीला, दान लीला, रास आदि हैं। ये लौकिक लीलाएँ लौकिक तो हैं, साथ ही इन सब में कुछ न कुछ अध्यात्मिक भाव भी निहित हैं।

रासलीला के अध्यात्मक पक्ष में कृष्ण परब्रह्म हैं, गोपियाँ प्रकृति स्वरूपा एवं राधा उनकी सार-रूपा हैं। लीला मात्र के लिये ह उनका जन्म होता है। यह रास सारी सृष्टि में व्याप्त है और अनन्त देश एवं अनन्त काल में सदैव होती रहती है। ब्रह्म से जीव उत्पन्न होता है एवं अन्त में उसी में लय हो जाता है। साधारण मनुष्य इस भेद को नहीं समझ सकते, अतः भगवान् गोपियों की उत्पत्ति करके रूपक के रूप में अपनी लीला भक्त के समक्ष रखते हैं। ज मनुष्य लीला के वास्तविक अर्थ को समझने लगता है वह भी उस भाग लेने लगता है एवं फिर वह भगवान् से भिन्न नहीं रह जाता भक्त की दृष्टि से लीला का यही प्रयोजन है।

एक अन्य रूपक में वृन्दावन सहस्र-दल-कमल है। गोप-गोपि जीव हैं, कृष्ण मुक्त पुरुष हैं। जीव परमात्मा के साथ क्रीडा क हैं एवं भगवान् की लीला में भाग लेते हैं। गोपियाँ मुरली का श सुनते ही घर की सुध-बुध विसार भगवान् की लीला में तन्मय जाती हैं। चारों ओर गोपियाँ और बीच में राधाकृष्ण। बस-स उस समय कृष्णमय हो जाते हैं। यह रास ऐसी होती है कि दे गंधर्व, शिव-पार्वती भी इसमें भाग लेते हैं। रास के बीच में रा को गर्व होता है भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं। वास्तव में गर्व भक्त से भगवान् को प्रथक् कर देता है। फिर राधा ने पश्चात् किया और कृष्ण प्रकट होकर रास करने लगे। भक्त जब पश्चात् करता है तो भगवान् पुनः अपने को प्रकट कर देते हैं।

इसी प्रकार चीर हरण लीला का आध्यात्मिक अर्थ आत्मा माया के आवरण से प्रथक् (नग्न) होकर ईश्वर से मिलना है। अ छविधारी कृष्ण यमुना के किनारे खड़े हैं, गोपियों ने वस्त्र कि पर रख दिये। भगवान् के हाथ में सब को वश में करने वाली मुर (योगमाया) है। गोपियाँ यमुना में स्नान करने लगीं। अध्यात्म-प में यमुना स्नान का अर्थ है—भक्ति सरिता में निमग्न हो जान गोपियाँ तन्मय होकर उसमें डुबकी लगाती हैं। उनकी भक्ति रा

नुगा है पर उस पर माया का पर्दा है। भगवान् इस पर्दे को दूर करने के लिये तट से उनके वस्त्रों को उठा ले गये। आवरण के हटते ही भक्त व भगवान् एक हो जाते हैं।

दान लीला में गोपियों के अंगों के दान का वर्णन है। अध्यात्म-पक्ष में भक्त भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है, उससे कुछ भी दुराव नहीं रखता। उसे अपना सर्वस्व देने में ही आनन्द होता है।

हिंडोल लीला में भी भगवान् की नित्य लीला का वर्णन है। भगवान् ने स्वयं विश्वकर्मा को हिंडोला बनाने के लिये कहा। हिंडोला तैयार हुआ। कृष्ण, राधा के साथ झूला झूलते हैं। ललिता-विसाखा आदि उन्हें झुलाती हैं देवता इस लीला को देखने आते हैं। और इस लीला को देख मोहित हो जाते हैं। आगे सूरदास स्वयं इसे स्पष्ट करते हैं।

कहत मन इहै वांछा भये न बन द्रुम डार।
देह धरि प्रभु सूर विलसत ब्रह्म पूरण सार॥

यह लीला भी जैसे पहले ही कह चुके हैं—नित्य है। गोलोक की लीला का ही प्रतिबिम्ब है—

तैसिये यमुना सुभग जेर रच्यो रँग हिंडोर।
तैसिये ब्रज बधू बनि हरि चित लोचन कोर॥
तैसो वृन्दा विपिन घन बन कुंज द्वार विहार।
विपुल गोपी बिपुल बन रह रव न नन्द कुमार॥
नित्य लीला नित्य आनन्द नित्य मंगल गान।
सूर सुर मुनि मुखन अस्तुति धन्य गोपी कान्ह॥

इसी प्रकार उनकी अन्य लीलाएँ भी हैं। उनमें यद्यपि आध्यात्मिक संकेत हैं पर वे अस्पष्ट हैं। इन लीलाओं में इस प्रकार के संकेत नहीं, पर कवि अपने विषय को इतनी सुन्दरता से स्थापित करने में सफल हुआ है कि पाठक स्वयं भाव की उच्चतम, अपार्थिव एवं आध्यात्मिक भूमि तक पहुँच जाता है।

कुछ अन्य सामान्य प्रश्न

प्रश्न २५—"सूर सागर" के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति पर क्या प्रकाश पड़ता है?

उत्तर—साहित्य सामाज का प्रतिबिम्ब है। समाज में जो सांस्कृतिक, धार्मिक या नैतिक स्थितियाँ होती हैं, साहित्य के ऊपर उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। किसी भी प्रबन्ध-काव्य में तत्कालीन सामाजिक वातावरण का चित्रण आवश्यक-सा हो जाता है। यद्यपि सूरसागर प्रबन्ध-काव्य नहीं, और नाहीं सूर का लक्ष्य श्रीकृष्ण के समस्त जीवन का चित्रण था, फिर भी कृष्ण जीवन या लीलाओं का सूर ने जितना चित्रण किया है, उससे तत्कालीन, सामाजिक व धार्मिक स्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कवि ने समाज के संस्कार, पूजा व्रत, उत्सव, मनोरंजन, भोजन आदि के न्यूनाधिक विवरण दिये हैं।

सूरसागर में ब्रज का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है, उसमें ब्रज के प्राकृत-धन (कृष्ण) के चित्र तो हैं ही साथ ही वहाँ के गार्हस्थ्य जीवन का भी विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। अपने समय में उन्होंने आचार-विचारों का जैसा परिचय प्राप्त किया उसका चित्रण भी उन्होंने वैसे ही कर दिया। जन्मोत्सव, छठी, नाम कर्म, अन्न प्राशन, वर्ष गाँठ, कर्ण-छेदन, गोवर्धन पूजा आदि अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिनमें सूरदास ने अपने समय के ब्रज के आचार-विचारों का चित्रण किया है। ये आचार-विचार पूर्णतः ग्राम्य हैं। इनका वर्णन भी सूर ने बड़े नैसर्गिक ढंग से किया है, और साथ ही इन प्रसंगों में मनोविज्ञान की सामिग्री भी उपस्थित की है।

(१) जन्मोत्सव—

अपने देश में पुत्र-जन्म अनेक पुण्यों का परिणाम समझा जाता है। सभी स्त्री-पुरुष पुत्र का मुख देखने को लालायित रहते हैं। कृष्ण का जन्म हुआ है। यशोदा कहती हैं—

"आवहु कन्त देव परसन्न भये पुत्र भयो मुख देखो धाई।
दौरि नन्द गये सुत मुख देख्यौ सो शोभा सुख बरनि न जाई॥"

कृष्ण का जन्म हुआ है और स्त्रियाँ बधावा लेकर जा रहीं हैं।

"कोऊ भूषण पहिरयो, कोऊ पहिरति, कोऊ वैसे ही उठि धाई।
कञ्चन थार दूब दधि-रोचन गावत चलीं बधाई॥

इस अवसर पर अनेक बाजे बजे। बन्दनवार बँधे, वेद-ध्वनि हुई। ग्रह-नक्षत्र शोधन हुआ। सूर के समय डाढ़ी नाम की जाति थी। ये सूतों के समान ही थे। उनका नाचना भी सूर ने लिखा है। वे दान के लिये झगड़ते भी हैं।

(२) छठी व्यवहार—

छठी के समय मालिन ने बन्दनवार बाँधा। बालक को पालकी में लिटाकर आँगन में लाया गया। नाइन ने महावर आदि लगाये। भृत्यों को भाँति-भाँति के कपड़े बाँटे गये। सखियाँ पीले कपड़े पहन कर आईं। काजल व रोरी से छठी कर्म किया गया।

(३) नाम कर्ण—

ब्राह्मण व चारण घर में आये। उन्होंने दूर्वा दिया। नई हल्दी तथा दही से बालक का टीका कराया गया।

(४) अन्न-प्राशन—

प्राय: ६ महीने के बाद अन्न-प्राशन संस्कार हुआ। पुरोहित को बुलाकर शुभ राशि सोधी गई। सखियों को बुलाकर यशोदा ने गीत गवाये। यशोदा को गालियाँ दी गईं। यशोदा ने कृष्ण का उबटन करके नये आभूषणों से सजाया। नन्द कृष्ण का मुँह जुठारने के लिये उन्हें गोद लेकर बैठे। पुरुष नन्द के साथ आनन्द-विनोद करने लगे थोड़ी देर में थाली में खीर लाई गई। जब नन्द ने श्रीकृष्ण के मुख पर खीर लगाई तो सब स्त्रियाँ गान करने लगीं।

(५) वर्ष गाँठ—

वर्ष पूरा हुआ; सबको निमंत्रण दिया गया; ब्राह्मण भी बुलाये

गये; चौक पूरा गया; यशोदा ने कृष्ण के उबटन लगाकर स्नान कराया; वर्ष गाँठ का डोरा उसको बाँधा गया; नाँच हुआ गाना हुआ।

(६) कर्ण छेदन--

नाई आया; बालक के हाथ में सोहारी और भेली दी गई; सींक में रोचन भर कर यशोदा ने कान पर चिह्न दिया; बालक पर न्योछावर किया गया; नन्द ने ग्वाल-बालों को वस्त्र पहनाये। सूर ने इसका वर्णन किया है—

कृष्ण कुँवर को कनछेदन है, हाथ सुहारी भेली गुर की।
विधि विहँसत, हरि हँसत हेरि हरि यशुमति के धुकधुकी उरकी॥

(७) गोवर्धन पूजा—

सब ग्वाल-बाल शकट सजाकर गोवर्धन की ओर चले; साथ में वे जो षडरस भोजन लाये थे उससे गोवर्धन की पूजा की; ब्राह्मण को बुलाकर यज्ञारम्भ किया गया; ग्वाल पर्वत पर चढ़ कर उस पर दूध डालने लगे एवं वस्त्राभूषण चढ़ाने लगे; लौटकर घर आये; मंगलाचार हुआ और दीपमालिका मनाई गई।

सूरसागर में पूजा का भी वर्णन है। सूर के समय में गौरी, शिव एवं सूर्य पूजा का प्रचार था। लोग व्रत रखते थे एवं यमुना-स्नान करते थे।

उन दिनों शकुन मनाना भी प्रचलित था। मृगमाला को दाहिनी और जाते हुए देखना अच्छा माना गया है। कौवे के उड़ने से भी शकुन जानने का वर्णन है।

यद्यपि सूर ने राधा-कृष्ण का गंधर्व-विवाह कराया है तथापि सूर के सम्बन्ध में विवाह की जो रीति थी उन सबका वर्णन उन्होंने किया है। मौर धारण करना, निमन्त्रण, मंडप और गान, गीत व वेद मन्त्रोच्चारण, पाणिग्रहण व भाँवरि, गालियाँ गाना, कंकण खोलना आदि सभी बातों का वर्णन है।

कंकण खोलने का वर्णन देखिये—

नहिं छूटै मोहन डोरना हो।
बड़े हो बहुत अब छोरियो हो ये गोकुल के राई।
की कर जोरि करौ विनती, कै छुवौ श्री राधाजी के पाँई॥

इनके साथ ही सूरसागर में पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार कुछ में ंत्यिक एवं नैमित्तिक आचारों का भी वर्णन है। नैत्यिक आचारों ंगलाचार, शृङ्गार, ग्वाल, राज-भोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या, आरती, ायन का वर्णन है। नैमित्तिक आचारों में हिंडोला, चावर, फाग, सन्त आदि का वर्णन है। ये ही आचार लोक जीवन के भी अंग थे।

बसन्त का वर्णन देखिये—

कोकिल फूली बन-बन फूले मधुप गुँजारन लागे।
सुनि भयो भोर रोर बंदिन को मदन महीपति जागे।
तिन दूने अंकुर द्रुम पल्लव जे पहिले दवदागे।
मानहु रति पति रीझि याचकन बरन करन दए बागे।

× × ×

ऋतु बसंत के आगमहि मिलि झूम कहो।
सुख सदन मदन को जोर मिलि झूम कहो।
कोकिल वचन सोहावनो मिलि झूम कहो।
हित गावत चातक मोर मिलि झूम कहो।

सूरसागर में ऐसा भी वर्णन है कि सूर के समय तक ब्रजवासी मोगुण से शून्य थे। अर्थात् वे प्याज, लहसुन, माँस मद्य, आदि मोगुणी पदार्थों का सेवन नहीं करते थे।

सूरदास के समय की धार्मिक परिस्थिति ऐसी थी कि तब नाथ-थियों की प्रधानता थी। इन योगियों की योग साधना का कुछ ल्लेख भ्रमरगीत के प्रसंग में हुआ है। आसन, ध्यान और साधना नके साधन के अंग थे। ये मुद्रा, भस्म, विषाण और मृगचर्म धारण रते थे। ये योगी गोरख का नाम लेकर अलख जगाया करते थे। ये हते थे कि संसार ब्रह्ममय है और उसी रूप में उसे देखो। म्नपद में इनकी साधना की स्थिति और स्पष्ट हो जायगी—

इंगला पिंगला सुसमना नारी।
सून्यो सहज में बसो मुरारी॥
ब्रह्मभाव करि सब मैं देखौ।
अलख निरंजन को ही लेखौ॥
पद्मासन इन मन चित लायो।
नैन मूँदि अन्तर्गत ध्याओ॥
हृदय कमल में ज्योति प्रकाशी।
सो अच्युत अविगत अविनाशी॥

योग के अतिरिक्त उस समय निर्गुण उपासना का भी प्राधान्य था। काशी सन्यासी और तार्किक पण्डितों का केन्द्र था।

उस युग में साधारण लोगों का जीवन कुछ शुष्क-सा हो गया था। जीवन में विलासता की मात्रा बढ़ गई थी। मनुष्य का जीवन आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भन आदि में बीत जाता था—

आलिंगन चुम्बन परिरम्भन।
नख छत चारु परस्पर हासी॥
केतिक करना वेलि चमेली।
सुमन सुगंध सिचाये॥

अपने वैभव को प्रकट करने का भी बड़ा शौक था। जन-समाज उपासना के बाह्यांगों पर ही अधिक बल देता था, झूठे आडम्बर में फँसे थे। उनके जीवन में अस्थिर भावनाओं की प्रधानता थी। उनके सामने कोई आदर्श नहीं था। वे अपने जीवन को हास-विलास, चौपड़ व कलह में बिता देते थे—

चौपड़ि जगन मढ़े जुग बीते।

लोगों में समय की मात्रा का अभाव-सा हो गया था। परकीया के प्रति प्रेम प्रचलन समाज के मूलोच्छेदन पर लगा हुआ था। लोग पनघट पर जाती हुई स्त्रियों को छेड़ते थे। ब्रज के लोग कृषि करते थे एवं स्त्रियाँ दधि वेचने जाती थीं। इस प्रकार सूरदास जी ने तत्कालीन समाजिक परिस्थितियों का पूर्ण चित्रण किया है।

प्रश्न २६—कृष्ण-भक्ति के विकास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर—भारतीय साहित्य के विद्यार्थी के लिये कृष्ण नाम चिर-परिचित है। महाभारत में तो श्रीकृष्ण का नाम अनेक बार आया है। महाभारत में श्रीकृष्ण कहीं योद्धा के रूप में, कहीं वेदवेदांगवेत्ता के रूप में और कहीं धर्मोपदेष्टा के रूप में आये हैं। गीता के रूप में उन्होंने एक महान् धर्म का उपदेश दिया है। कई स्थानों पर इन्हें सात्वत धर्मोपदेष्टा कहा गया है। कृष्ण का अमर नाम वासुदेव भी है। वसुदेव की सन्तान होने के कारण इस प्रकार कृष्ण व वासुदेव के नाम लोक में प्रसिद्ध हो गये।

छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण को देवकी पुत्र व घोर आंगिरस ऋषि का शिष्य कहा गया है। देवकी पुत्र कृष्ण वासुदेव कृष्ण ही थे। घोर आंगिरस ऋषि का नाम कौसीतकी ब्राह्मण में भी आता है। उसके साथ ही कृष्ण के नाम का भी उल्लेख है। इन सब उल्लेखों से यही सिद्ध होता है कि कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव एवं माता का देवकी था। वे घोर आंगिरस के शिष्य थे। समस्त वेदवेदांगों के ज्ञाता थे। वे राजनीति एवं युद्ध में भी कुशल थे। उन्होंने सात्वत सम्प्रदाय की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य था पशु-हिंसा-पूर्ण यज्ञों का विरोध एवं निवृत्ति मार्ग के स्थान पर प्रवृति मार्ग का प्रचार। इसी धर्म का नाम बाद में वासुदेव धर्म हुआ। सम्भवत: इसी सर्वाङ्गीण समाजिक एवं आत्मिक उन्नति के कारण वे जनता के विश्वासपात्र बन गये और जनता उनकी भक्त हो गई। सभी आबल वृद्ध, मूर्ख से लेकर पण्डित तक सभी उनकी पूजा करने में अपने को धन्य समझने लगे। अत: यह निश्चित है कि सात्वत सम्प्रदाय की स्थापना करने के कारण वे ईश्वर रूप में भी पूजित होने लगे। महाभारत में भीष्म ने उनकी ईश्वर रूप में ही पूजा की है। बाद के पौराणिक साहित्य में उनके ईश्वर रूप का और भी विकास हुआ। हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, वायुपुराण में यह कथा आती है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के तृतीय खण्ड एवं श्रीमद्भागवत के दशम व एकादश स्कन्धों में तो कृष्ण की कथा अत्यन्त विस्तार से आई है। कृष्ण का जो स्वरूप हम पूर्व वर्णित कर चुके हैं उसके साथ ही पूतना बध, शकट भंजन, माखन चोरी, रास आदि प्रसंग भी उन्हीं कृष्ण के साथ जोड़ दिये गये।

श्रीकृष्ण की उक्त लीलाओं का वर्णन महाभारत में नहीं आता है। अतः विद्वानों को इसमें ऐतिहासिक सत्यता ठीक रूप से प्राप्त नहीं होती। क्योंकि भागवत पुराण को सर्व पुराणों में श्रेष्ठ कहा गया है, उसमें कृष्ण की उक्त लीलाएँ हैं और महाभारत में नहीं, वह भी ऐतिहासिक ग्रन्थ है। कुछ विद्वानों ने कहा है कि कृष्ण क्राईष्ट का रूपान्तर है। जब ईसाई धर्म का मद्रास में विकास हुआ तो हिन्दुओं ने क्राईष्ट के रूप को कृष्ण का रूप दे दिया होगा, पर ये तो कोरी गप्पें ही हैं। कृष्ण का अस्तित्व तो हम ब्राह्मण ग्रन्थों तक में दिखा चुके हैं, उस समय तो क्राईष्ट के किसी पूर्वज का भी जन्म न हुआ होगा। अतः उन विद्वानों की धारणा स्वतः निर्मूल हो गई।

अब प्रश्न एक और भी है कि महाभारत में गोपियों का नामोल्लेख नहीं फिर गोपियों की लीला क्या है? यह कहाँ से आई। इसके विषय में श्री भाण्डारकर के मतानुसार गोपी शब्द उस आभीर जाति से सम्बन्ध रखता है जो सीरिया से चलकर भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में ईसा से पूर्व ही आकर बस गई थी। वह जाति बाद में दक्षिण में बस गई और वहाँ से गोपी-कृष्ण लीला का प्रचार हुआ। ये सब बातें भी कल्पित ही जान पड़ती हैं क्योंकि एतद्देशीय किसी साहित्य में आभीरों (अहीरों) को बाहर से आया हुआ नहीं कहा गया है। यह भी सम्भव है कि आभीर क्षत्रियों में बाल-गोपाल की पूजा होती हो, किन्तु इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि वे (आभीर) बाहर से आये थे। भागवत में वसुदेव ने आभीराधिष्यतिनन्द को अपना भाई माना है, इससे तो श्री भाण्डारकर का मतः समाप्त हो गया। हाँ हम यह सम्भावना अवश्य करते हैं कि ये आभीर दक्षिण।

वासी रहे होंगे, बाद में उत्तराखण्ड में आ गये होंगे, इनमें बाल-कृष्ण की छटा एवं राधा और गोपियों की लीला का प्रचार रहा होगा। जब उन्होंने उत्तराखण्ड में वास किया तो उक्त लीलायें भी कृष्ण-भक्ति के साथ ही जोड़ दी गई।

उक्त सभी बातों से यह निष्कर्ष निकला कि बाल-कृष्ण की भक्ति दक्षिण की देन है। भागवत महात्म्य में एक स्थान पर लिखा है कि भक्ति द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्नाटक में बड़ी हुई। कहीं-कहीं महाराष्ट्र में भी उसका मान हुआ, किन्तु गुर्जर देश (गुजरात) में वह बूढ़ी हो गई, जब भक्ति वृन्दावन में आई तो फिर वह अत्यन्त प्रिय रूपवाली सुन्दरी नव-युवती-सी हो गई। वैष्णव धर्म के प्रायः सभी आचार्य दक्षिण के थे, इससे यही सिद्ध होता है कि कृष्ण भक्ति का आरम्भ द्रविड़ देश में ही हुआ। भागवत में एक श्लोक भी मिलता है। जिसमें लिखा है कि भक्त-जन द्रविड़ देश में ही अधिक पाये जाते हैं। वह श्लोक निम्न प्रकार से है—

> कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण परायणाः।
> क्वचित् - क्वचित् महाराज द्रविडेषु च भूरिशः॥

यह तो हुई कृष्ण भक्ति के सम्बन्ध की एक कल्पना। अब एक कल्पना लीजिये। कृष्ण भक्ति को हम वैष्णव भक्ति भी कहते हैं "विष्णोः इदं वैष्णवम्"। विष्णु का नाम वेदों में अनेक बार आया है "इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रिधा निदधेपदं" वेद के अनेक मन्त्रों में विष्णु के त्रिविक्रम, उस गाय और गोपा भी कहा गया है। इसके साथ ही निम्न मन्त्र भी ध्यान देने योग्य है—

> ता वां वास्तून्युष्मसि गमध्यै,
> यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
> अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः,
> परमंपदमत्र भाति भूरि॥

इसमें अनेक सींगों वाली गौओं का वर्णन है। वृष्णि शब्द भी है। यह ध्यान देने योग्य है कि पुराणों में कृष्ण को विष्णु का

अवतार कहा गया है और उन्हें वृष्णि वंश में उत्पन्न कहा गया है। [वेद में इस मन्त्र का अर्थ अन्य ही है यहाँ हमने शब्द साम्य से उक्त अर्थ लिया है]। इसके साथ ही वेद में राधा व्रज, वृषभानु, रोहिणी, अहि (कालीनाग), अर्जुन आदि कृष्ण लीला से सम्बन्ध रखने वाले नाम आ गये हैं। इन शब्दों को देखने से सम्भवतः कोई वैदिक प्रणाली को न जानने वाला यही अर्थ निकालेगा कि वेद में इन नामों के होने से वेद कृष्ण के बाद लिखे गये हैं, पर वस्तुतः उक्त शब्दों का वेद में पौराणिक अर्थ नहीं, वहाँ तो अन्य ही अर्थ है। जैसे कृष्ण = रात्रि, अर्जुन = दिन, गौ = किरणें आदि।

पहले ऋषियों को वेदों का साक्षात् ज्ञान था। उन्होंने बाद में अन्यों को दिया। इस प्रकार से वेद की व्याख्या आरम्भ हुई। वेदों के छः अंग हैं, उनमें एक निरुक्त भी है। निरुक्त के समय तक वेदों के ज्ञान या उसके अर्थ के कई सम्प्रदाय चल पड़े थे। उनमें नैरुक्तिक, याज्ञिक एवं ऐतिहासिक सम्प्रदाय प्रधान हैं। ऐतिहासिक सम्प्रदाय का कार्य भी वेद की व्याख्या करना ही है। महाभारत में लिखा है कि इतिहास और पुराणों से वेदों की व्याख्या करे। ऐतिहासिक व्याख्याता भी इतिहास की रक्षा के साथ वेदों की व्याख्या करते थे। ये लोक वैदिक कथाओं को आलंकारिक ढंग पर स्पष्ट करते थे। इससे जनता का मनोरञ्जन भी हो जाता था और उपदेश का उपदेश भी। अतः वेद में जो कृष्ण, राधा, गोप आदि शब्द आये हैं वे निश्चित ही ऐतिहासिक नहीं पर ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम वेदों के नाम से ही रखे गये। देखिये—

सर्वेषांतु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

आर्य जाति ने यह कल्पना किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं अपितु विशुद्ध लोक-कल्याण भावना से ऐसा किया। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि राम, कृष्ण, व्यास आदि ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं? अवश्य ही ये विभूतियाँ भी ऐतिहासिक हैं। इनमें अवतार

भावना-कवि कल्पना-प्रसूत हैं। जब अवतारों की कल्पना हो गई तो उपनिषदों के नारायण को कृष्ण के रूप के साथ मिलाया गया एवं विष्णु व नारायण को भी एक ही कहा गया। नारायण को यज्ञ पुरुष कहते हैं और वेदों में कहा है "यज्ञो वै विष्णुः" अर्थात् यज्ञ ही विष्णु है। इस प्रकार कृष्ण, नारायण और विष्णु एक हुए। कृष्ण वसुदेव के पुत्र होने के कारण वासदेव भी कहलाते हैं। अतः वासदेव, कृष्ण, विष्णु, और नारायण एक ही हुए। इस प्रकार महाभारत में जो कृष्ण वेदवेदांगवेत्ता व राजनीतिज्ञ हैं, छान्दोग्य-उपनिषद् में घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य हैं वे ही प्रथम सात्वत धर्म के उपदेशक बनते हैं और बाद में साक्षात् ईश्वर के रूप में पूजे जाते हैं:—

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"

वैष्णव धर्म के द्वितीय उत्थान काल तक यही बात बनी रही। द्वितीय उत्थान के समय भारत में बौद्ध धर्म का पतन हो रहा था। बौद्ध धर्म के पतन के बाद धार्मिक क्षेत्र में तीन धारायें चलीं—पूर्व में तांत्रिक मत का प्रचार हुआ; पश्चिम में शिव मत का एवं दक्षिण में विष्णु की पूजा प्रचलित हुई। कुछ काल के अनन्तर दक्षिण की यह भक्ति पद्धति उत्तर भारत में भी आगई। इसमें शिव को विष्णु की शक्ति माना गया। अब समस्त पश्चिमीय प्रदेश दक्षिण भारत में विष्णु के तीनों रूपों—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उपासना प्रचलित हो गई।

बाद में कुमारिल भट्ट के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म का अवशेष भी लुप्त हो गया। कुमारिल भट्ट के बाद आचार्यों का युग प्रारम्भ हुआ। इन आचार्यों ने एक बार फिर वेद, उपनिषद् और पुराणों की प्रतिष्ठा की। ये आचार्य—जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि—सब दक्षिण के ही थे। शंकराचार्य ने जीव व ब्रह्म की एकता स्थापित करके ज्ञान मार्ग की प्रतिष्ठा की। नारायण व शिव के लिये भी अनेक भक्तिपूर्ण छन्द लिखे। इससे यह स्पष्ट है कि उन पर भी भक्ति का प्रभाव था।

वैष्णव धर्म में भक्ति के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य हैं। उत्तर

भारत में धर्म क्षेत्र में भक्ति का बीज उन्हों ने बोया। उनके कुछ ही पश्चात् आंध्र में निम्बार्क उत्पन्न हुए। भक्ति के इस क्षेत्र को उन्होंने और निस्तार दिया। बंग देश व उत्तर भारत में उनकी शिष्य मण्डली बढ़ गई। इसके साथ ही मधुरा भक्ति का भी जन्म हुआ। रामानुजाचार्य के प्रायः दोसौ वर्ष के बाद मध्वाचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने वैराग्य व नवधा भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने विष्णु को परमात्मा मान कर उनके राम व कृष्ण अवतारों को उपास्य माना। उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति को पूर्ण रूप से प्रचलित करने का श्रेय रामानन्द को है। उन्होंने भगवान् विष्णु के रामरूप की भक्ति का उपदेश दिया। रामानन्द ने यह भक्ति जन सामान्य—सभी-शूद्र आदि के लिये भी······के लिये सुलभ कर दी थी।

भक्ति के तृतीय व चतुर्थ उत्थान में परिवर्तन हुआ। वेद के गोपा व व्रज शब्दों से लीला प्रारम्भ हो गई। लीला का आध्यात्मिक अर्थ चित्तरञ्जिनी वृत्ति है। यह वृत्ति ईश्वरोपासना के अर्थ में परिवर्तित हो जाती है। भगवान् मुरली बजाते हुए अपने मधुर हास में सब को मुग्ध कर देते हैं, भक्त भी इसी अवसर को चाहता है। श्रीमद् भागवत् में यह लीला पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हुई। ब्रह्म वैवर्त में राधा भी कृष्ण के साथ मिल गई व राधा-कृष्ण राधामय हो गये। प्रकृति व पुरुष का अलौकिक सम्मिलन हो गया। इसी गोपीवल्लभ की कहानी ने राधा-कृष्ण का चरित्र बन कर बाल गोपाल की उपासना का रूप धारण किया। हम पहले संकेत कर आये हैं कि निम्बार्क ने मधुरा भक्ति का प्रचार किया। भागवत व ब्रह्म वैवर्त की उक्त भावना ने कृष्ण की मधुरा भक्ति के विकास में विशेष सहयोग दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी तक मधुरा भक्ति का इतना प्रचार हो गया कि श्रीमद्वल्लभाचार्य को इसके लिये शास्त्रीय व्यवस्था देनी पड़ी। इसके अनन्तर कुछ ही समय में समस्त उत्तर भारत कृष्ण की मधुरा भक्ति से प्लावित हो गया। उधर बंगाल में महाप्रभु चैतन्य ने कृष्ण की मधुरा भक्ति को दृढ़ किया, उन्होंने स्वयं को राधा रूप में मान

कृष्ण की उपासना की, इधर ब्रज में वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति को बढ़ावा दिया। उन्होंने कई बार भारत भ्रमण किया और इस भ्रमण में सहस्रों लोग कृष्ण भक्त होगये। वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मत की स्थापना की जिसमें बालकृष्ण की पूजा का विशेष महत्त्व है। कृष्ण के साथ ही राधा का भी वर्णन है। उनसे दीक्षित होने के बाद भी इसी भक्ति को कवि कुल शिरोमणि श्री सूरदास जी ने आगे बढ़ाया। और इसके बाद भक्त-जन भक्ति की उस सरिता में गोता लगाते-लगाते अघाये नहीं।

संक्षेप में कृष्ण भक्ति के विकास की यही कहानी है।

प्रश्न २७—"सूर की कल्पना उच्चकोटि की भाव सृष्टि करने वाली है, एवं अलंकारों से सुसज्जित होकर वह और भी आकर्षक बन जाती है"। इस कथन की समीक्षा कीजिये।—

उत्तर—कविवर सूरदास जी की कल्पना शक्ति-और अलङ्कार विधान उनके सरस हृदय, मर्मज्ञता तथा सौन्दर्यप्रियता की परिचायक है। भक्ति प्रकाशन में उनकी कल्पना को इतना विकसित होने का अवसर नहीं मिला, जितना कि वात्सल्य एवं शृङ्गार के वर्णन में; किन्तु फिर भी भक्ति में उसका सर्वथा अभाव भी नहीं है। अपनी इसी कल्पना के बल पर वे ऐसे भाव-चित्र उपस्थित कर सके हैं कि जो साहित्य संसार में सदा के लिये ऊपर रहेंगे। कृष्ण की पीताम्बर और राधा की नीली साड़ी तो सूर की आखों के सामने सदैव उपस्थित रहते हैं। राधा-कृष्ण के वस्त्रों के ये रंग उन दोनों के शारीरिक रंगों के विवर्णय ही हैं। इस पर सूर की कल्पना देखिये :—

नीलाम्बर श्यामल तनु की छवि, तनु छवि पीत सुवास।
घन भीतर दामिनी प्रकाशत दामिनि घन चहुँ पास।

राधा की नीली साड़ी के अन्दर उसका गौर वर्ण का शरीर और कृष्ण के श्यामल अंगों के ऊपर उनका पीताम्बर ऐसे प्रतीत

होते हैं जैसे कि बादल के भीतर बिजली चमक रही हो और बिजली के भीतर बादल लुप्तोत्प्रेक्षा के द्वारा कितना सुन्दर यह चित्रण हुआ है।

भ्रमरगीत का एक-एक पद देखिये। कितनी सुन्दर कल्पना है इसमें। देखिये—

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
कबहुँक जामिनि होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात।

नागिनी का यह नियम है कि वह डस कर उलटी हो जाती है। उसका ऊपरी भाग काला एवं नीचे का श्वेत होता है। डसने के बाद वही श्वेत भाग प्रकट होता है। उक्त पद भी कृष्ण-पक्ष की काली रात्रि का वर्णन है। कृष्ण-पक्ष की रात्रि अपने प्रथम भाग में अन्धकार से काली होती है। रात्रि में चन्द्रमा देर से उदित होता है, जब चन्द्रोदय होता है तो उसकी ज्योत्स्ना श्वेत होती है। अब वह उलटी अर्थात् सफेद हो जाती है। इसी दृश्य के आधार पर सूर ने कल्पना की कि वह विरहिणी को खाकर उलटकर श्वेत हो जाती है। सूरदास की नेत्र सम्बन्धी एक कल्पना देखिये। इसमें उन्होंने लोचनों को भृङ्ग के रूप में चित्रित किया है—

लोचन भृङ्ग भये री मेरे।
लोकलाज बन-घन बेलि तजि, आतुर ह्वै जु गड़े रे॥
श्याम रूप रस वारिज लोचन, तहाँ जाइ लुब्धे रे।
लपेटे लटकि पराग बिलोकनि, सम्पुट लोभ परे रे॥
हँसनि प्रकाश बिभास देखि कै, निकसत पुनि तँह बैठत।
सूरश्याम अँबुज कर चरननि तँह-तँह भ्रमि-भ्रमि पैठत॥

एक सखि कृष्ण की छवि पर मुग्ध है। वह कहती है—ऐ सखि! मेरे नेत्र तो भौंरे बन गये हैं। लोक-लाज रूपी बनकी घनी बेलों को छोड़कर तथा व्यग्र होकर कृष्ण के रूप रूपी कमल में गड़ गए हैं। पराग से युक्त कृष्ण के नेत्र-कमलों पर मेरे नेत्र रूपी भ्रमर लुब्ध हो गये हैं, तथा लोभवश उसके सौंदर्य कोष में दृष्टि सन गई है। हँसी

रूपी सूर्य के प्रकाश को देख कर विकशित हुए कमल नेत्रों से निकल कर हमारे नेत्र-भ्रमर बार-बार उन पर बैठते हैं, तथा कृष्ण के हाथ और चरण रूपी कमलों पर घूम-घूम कर जा बैठते हैं। नेत्रों को इससे अधिक उपमा और कौन देगा।

सूर की कल्पना कहीं भी भावुकता का अञ्चल छोड़कर नहीं बढ़ी। उनके काल्पनिक चित्र किसी न किसी भाव को व्यक्त करते ही हैं। कैसा ही प्रसंग हो, सूर कल्पना के साथ उसका आन्तरिक तत्त्व अवश्य ही चित्रित करेंगे। गोपियों की आखों से निकलते हुए आँसुओं के विषय में एक चित्र इस प्रकार का है—

मेरे नैना विरह की वेलि बई।
सींचत नैन नीर के सजनी भूर पताल गई॥
विकसति लता स्वभाइ आपने छाया सघन भई।
अब कैसे निरुवारों सजनी, सब तन पसरि छई॥

(गोपी के) नेत्रों से गिरते हुए आँसू विरह की लता को सींच रहे हैं। लता सिंचने से फैलती है, यह विरह की बेल भी समस्त शरीर पर छा गई है। आह! अब उसे कैसे दूर किया जाय?

इस प्रकार नेत्रों पर सूर ने एक से एक बढ़ कर कल्पनायें की हैं। अब मुरली पर की गई कल्पना पर भी विचार कीजिये :—

अधर रस मुरली सौतिन लागी।
जा रस कों षट ऋतु तप कीन्हों सो रस पिवत सभागी॥
कहाँ रही, कहँ ते यह आई कौने याहि बुलाई।
सूरदास प्रभु हम पर ताकों कीनी सौति बनाई॥

मुरली क्या है गोपिकाओं से स्पर्धा करने वाली राधा की सपत्नी है। जो कि कृष्ण के अधर रस को पी रही है। बड़ी सौभाग्य-शाली है यह!!

मुरली सौत ही नहीं, बड़ी धृष्ट; मानवती पत्नी भी है। इसने कृष्ण को मोहित ही नहीं किया उसका सर्वस्व तक हरण कर लिया है, नाना नाच नचा चुकी है। देखिये तो—

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुनरी सखि! जदपि नँदनन्दहिं नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पाँइ ठाढ़ौ करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ी ह्वै आवति॥
अति अधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नारि नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर कर-पल्लव सन पद पलुटावति॥
भृकुटी कुटिल कोप नास पुट हम पर कोपि कुपावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन अधर सुसीस डुलावति॥

मुरली कृष्ण को अपने आधीन करके कैसा नाच नचा रही है। जैसा कहती है कृष्ण को वैसा ही करना पड़ता है। कृष्ण को एक पाँव पर खड़ा करके रखती है। मजाल क्या जो वे उसकी आज्ञा के बिना एक पग भी इधर-उधर हो जावें। कभी उनकी गर्दन झुका देती है, उसी की आज्ञा से कृष्ण की कमर भी टेढ़ी हो जाती है। और देखिये कृष्ण के अधरों की शय्या बना कर लेट गई और स्वयं उसे पैर दबाने की आज्ञा देने लगी। भगवान् उस मानवती को मनाने के लिये चुपचाप उसके पैर दबाने लगे। यह है सच्ची कवि कल्पना। कवि ने किस तरह हार्दिक भावों को व्यञ्जित कराया है।

विरह-वर्णन में सूर ने बादलों पर कैसी सुन्दर और अलौकिक कल्पना की है। पद का पढ़ते ही गोपियों की करुणा व्यक्त हो जाती है। देखिये—

देखियत चहुँ दिशि ते घन घोरें।
मानो मत्त मदन के हथियन बल करि बंधन तोरे॥
स्याम सुभग तन चुअत गंड मद बरसत थोरे थोरे।
रुकत न पौन महावत हू ते मुरत न अंकुस मोरे॥
बल बेनी बल निकसि नयन जल कुच कँचुकि बँद बोरे।
मनों निकसि बग पाँति दाँत उर अवधि सरोबर फोरे॥

बादल क्या हैं, मानों कामदेव के मद-मस्त हाथियों ने बन्धन तोड़ दिये हों। धीमी बूँदों का पड़ना ऐसा है मानो गण्डस्थ से मद

चू रहा हो। पवन महावत उन्हें अंकुस मार रहा है फिर भी वे मुड़ते नहीं। मदमस्त हाथी महावत के मोड़ने से भी नहीं मुड़ता। आकाश में उड़ती हुई श्वेत बगुलों की पाँति मानों हाथियों के श्वेत दाँत हैं। उन्होंने कृष्ण के आने की अवधि रूपी सरोवर को फोड़ दिया है आंखों से पानी जोरों से पड़ने लगा है जिसने कुच एवं कंकुकि आदि को डुबोकर पानी से तर कर दिया है। यहाँ बादल को हाथी का रूपक दिया है, हाथी काला होता है, बादल भी काले हैं। साङ्गरूपक का बहुत सुन्दर उदाहरण है।

नयनों के सम्बन्ध में हम दो पद पहले भी दे चुके हैं। अब वियोगिनी गोपियों के नयनों के वर्णन में कवि की कल्पना देखिये। इस वर्णन में कवि के रूपक उत्प्रेक्षा और व्यक्तिरेक का अति सुन्दर वर्णन किया है।

सखि इन नैनन ते घन हारे।
बिन ही ऋतु बरसत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे॥
उरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे।
बदन-सदन करि बसे बचन खग, दुख पावस के मारे॥
ढुरि ढुरि बुँद पर कंचुकि पर, मिलि काजर सौं कारे।
मानौ परन-कुटी सिव कीन्ही, बिन मूरति धरि न्यारे॥
सुमिरि सुमिरि गरजत जल छाँड़त, अश्र सलिल के धारे।
बढ़त ब्रजहिं सूर को राखैं, बिन गिरिवर-धर प्यारे॥

आँखों से बादल भी हार गये हैं, क्योंकि बादल तो वर्षा ऋतु में ही बरसते हैं, ये बिना ऋतु के ही बरस रहे हैं। इनके बरसने से आँखों की पुतलियाँ भी मैली पड़ गई हैं। दुख रूपी बर्सात के कारण वचन-खग मुख रूपी घर में घुस गये हैं अर्थात् दुःख के कारण मुख से वचन नहीं निकले। आँसुओं की धार में सारा ब्रज डूब रहा है। कृष्ण के अतिरिक्त कौन अब इसका रखवाला है। कितनी मनोहर कल्पना है।

सूर ने अनेक साँग रूपक बाँधे हैं और अपनी कल्पना के बल पर

उनका पूर्ण निर्वाह किया है। वंशी को रण-विजयी राजा का रूप देकर उन्होंने युद्ध विजय के पश्चात् जो भी दृश्य होता है उसका वर्णन किया है। देखिये—

वंशी वन राज आज आई रण जीति।
मेटति है अपने बल सबहिन की रीति॥
बिडरे गज यूथ शील, सैन लाज भाजी।
घूँघट पर कवच कहो, छूटे मान ताजी॥
कोऊ पद परसि गये अपने-अपने देश।
कोऊ भारि रङ्क भये हुते जे नरेश॥
देत मदन मारुत मिलि दशौ दिशि दुहाई।
सूर श्याम श्री गोपाल वंशी वश माई॥

विनय के पदों में साङ्ग रूपक का एक उदाहरण देखिये—

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल॥
महा मोह को नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
भरम भरयो मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल॥
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दे ताल।
माया को कटि-फेंटा बाँध्यो लोभ तिलक दयौ भाल॥
कोटिक कला काँछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल॥

इस पद में सूरदास जी ने नट का रूपक बाँधा है, जो नृत्य करते के समय ऊपर से चोली पहन लेता है और माला भी पहन लेता है। उसके पैरों में नूपुर भी मधुर आवाज से बजते हैं; वह कमर में फेंटा बाँधता है एवं मस्तक पर तिलक लगा लेता है। यहाँ भी बिलकुल वैसा ही है। काम-क्रोध चोला है, विषयों की माला है। महामोह रूपी नूपुर हैं उनमें निन्दा रूपी रसीला शब्द निकल रहा है। भ्रम से भरा मन पखावज है। तृष्णा अन्दर से अनेक प्रकार के ताल दे रही है। कमर में माया रूपी फेंटा है और लोभ का तिलक माथे पर लगा

है। इस प्रकार पूरा नट बनकर करोड़ों कलाओं को दिखला रहा है।

सूर ने कृष्ण-जन्म की घटना की असीम शोभा-शीलता का कवि-सिंधु के रूपक के द्वारा अनुरंजित करके वर्णन किया है, उसका भी एक चित्र देखिये—

सोभा सिंधु न अन्त रही री।
नन्द-भवन भरिपूरि उमँग चलि, ब्रज की वीथिनी फिरती बही री॥
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री।
कँह लगि कहौं बनाइ बहुत विधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री॥
यसुमति उदर-उदधि तैं उपजी, ऐसी सबनि कही री।
सूर श्याम प्रभु इन्द्र नील मनि, ब्रज वनिता उर लाइ गही री॥

उक्त विवेचन से कवि की उर्वरा कल्पनाशक्ति, सौंदर्य-प्रियता, सूक्ष्मदर्शिता, चित्रोपमता, वाग्वैदग्ध्य और असाधारण प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इस प्रकार सूर की कल्पना अलंकारों का प्रयोग करती हुई किसी न किसी भाव अथवा चेष्टा का निर्माण करती है, कहीं-कहीं तो वह मुक्त रूप से भी भावों का अभिव्यंजन कराती है। इन्हीं के बल पर तो सूर को "सूर" कहा गया है। वास्तव में इस पक्ष में सूर अपना कोई भी शानी नहीं रखते।

प्रश्न २८—सूरसागर के पदों को आप किन प्रमुख शीर्षकों में वर्गीकृत करेंगे? काव्य की दृष्टि से आप किसे श्रेष्ठ समझते हैं, और क्यों?

उत्तर—सूरसागर के पदों को हम निम्न प्रमुख शीर्षकों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) विनय के पद, (ख) चौबीस अवतारों से सम्बद्ध पद, (ग) रामलीला के पद, (घ) मथुरा गमन से पूर्व कृष्णलीला सम्बन्धित पद (बाललीला, गोपी-कृष्ण लीला आदि के पद), (ङ) भ्रमरगीत व द्वारिका गमन, (च) दृष्टकूट, (छ) विविध।

(क) विनय सम्बन्धी पद—इसमें प्रथम स्कन्ध में आये भक्त-वत्सलता, भक्त-महिमा, माया, अविद्या, तृष्णा, विनती आदि के पद एवं अन्यत्र आये हुए विनय के पद लिये जा सकते हैं। विनय में भक्ति की सातों भूमिकाएँ हैं। सूर के ये पद बड़े ही सार-गर्भित हैं।

(ख) चौबीस अवतारों से सम्बन्धित पद—इसमें द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ट, सप्तम, अष्ट, एकादश तथा द्वादश स्कन्धों के पद आयेंगे। इनमें सृष्टि की उत्पत्ति, मनुष्यों की उत्पत्ति, पृथु अवतार, ध्रुव कथा, जड़भरत की कथा, वृत्रासुर बध, कूर्म, वामन, मत्स्य, नारायण, हंस, बौद्ध एवं कल्कि अवतार की कथाएँ हैं।

(ग) रामलीला सम्बन्धी पद—इसमें सूरसागर के नवम स्कन्ध के कुछ पद हैं जिनमें सूक्ष्म रूप में रामलीला का वर्णन है। भागवत की अपेक्षा सूरसागर में रामावतार की कथा विस्तार से कही गई है।

(घ) मथुरा गमन से पूर्व कृष्णलीला सम्बन्धी पद—इन पदों को दो भागों में बाँट सकते हैं—बाललीला और गोपी-कृष्ण लीला। बाललीला में जन्म, मथुरा से गोकुल आना, छठी, पूतना बध, बाल्य-वर्णन, माखन चोरी, गो-दोहन आदि होंगे। गोपी-कृष्ण लीला में राधा-कृष्ण क्रीड़ा, दान लीला, रास लीला, पनघट लीला, होरी लीला आदि के पद हैं।

(ङ) भ्रमरगीत व द्वारिका गमन सम्बन्धी पद—इन पदों में गोकुल से मथुरा चले जाने के बाद कंस आदि को मारना, उग्रसेन का पुनः राज्यारूढ़ होना, देवकी वसुदेव के दर्शन, कुब्जा के घर जाना, गोपियों का विरह और भ्रमरगीत, द्वारिका गमन, जरासंध युद्ध, रुक्मिणीहरण, सुदामा दारिद्र मोचन आदि की कथायें हैं।

(च) दृष्टकूट—इन पदों में काव्य का चमत्कार दिखाना या गोप्य वस्तु को चतुरता से प्रकट करना ही सम्भवतः उनका अभिप्राय है। इसमें कहीं-कहीं नख-शिख वर्णन भी मिल जाता है। "अद्भुत एक अनूपम बाग, युगल कमल पर गजवर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग" आदि उसके उदाहरण हैं।

(छ) विविध—इस भाग में उनके सिद्धान्तों सम्बन्धी पद आयेंगे, जिसमें उन्होंने ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया है, या अन्य सिद्धान्त, जैसे रास को उन्होंने गांधर्व विवाह बताया है।

इन सब में काव्यकला की दृष्टि से जितना श्रेष्ठ हम, मथुरागमन से पूर्व व भ्रमरगीत के पदों को कहेंगे उतना अन्य को नहीं। यद्यपि विनय के पदों में भी काव्यमयता है, किन्तु जो आनन्द, वात्सल्य एवं शृङ्गार (संयोग एवं वियोग) के वर्णन में है वह अन्यत्र कहाँ? सूर का समस्त कवि-वर्ग या कला मानो वहीं एकत्र होकर आ गई हों।

कृष्ण के बाल्य-वर्णन को पढ़ कौन होगा जो सूर को अन्धा कहेगा? एवं दाँतों तले अँगुली न दबा देगा। इसी प्रकार भ्रमरगीत में विरह में रोती हुई गोपियों को देख कौनसा हृदय ऐसा होगा जिसके नेत्रों से आनन्दाश्रु न उमड़ आयेंगे। तभी तो कहा है—

"सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन केरे।"

प्रश्न २९—क्या सूरसागर में रहस्यवाद है? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

उत्तर—रहस्यवाद निराकार ईश्वर का उद्घाटन करने की प्रवृत्ति का नाम है। क्योंकि जब उसका कोई आकार ही नहीं, वह अनन्त एवं अज्ञेय है तो उसका अनुभव तो किसी प्रकार होना ही चाहिये। अतः काव्य क्षेत्र में ईश्वर की उसी रहस्यात्मकता (गुप्तता) को प्रकट करने की भावना रहस्यवाद कहलाती है; किन्तु ईश्वर को जब हम साकार मान लेते हैं तो वहाँ रहस्य कुछ रह ही नहीं जाता, सब साक्षात् हो जाता है। अतः सगुण भक्ति के कवियों में रहस्यवाद ढूँढना व्यर्थ ही है। सूर के सम्बन्ध में भी यही बात है। इतना होते हुए भी सूरसागर में कुछ पद ऐसे हैं जिनमें हमें रहस्यवाद की झलक मिल जाती है। सूर के इस रहस्यवाद को हम सगुण रहस्यवाद कहेंगे। वास्तव में रहस्यवाद भक्त की आत्मा की ऊँची उड़ान है,

जिससे वह परमात्मा की ओर अग्रसर होकर उसके अत्यन्त सन्निकट पहुँच जाता है।

वैसे तो भगवान् की समस्त लीला ही रहस्यात्मक है। एक आश्चर्य है, एवं जिस भगवत् अनुग्रह से यह आश्चर्य सत्य हो जाता है वह भी रहस्यमय वस्तु ही है। इसी लिये सूर ने अपने कई पदों में भगवान् की लीला के प्रति आश्चर्य व्यक्त किया है। देखिये—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै।

परन्तु हमारा संकेत तो यहाँ उन पदों की ओर है जिनमें भक्त की आत्मा भगवान् के वियोग से दुःखित होकर, एक अलौकिक एवं अकल्पित लोक का निर्माण करती है। निर्गुणी रहस्यवादी मूर्त चित्रों की उपेक्षा करते हैं परन्तु भक्त सूरदास के रहस्यवादी पदों में भी मूर्त चित्र स्पष्ट रूप से चित्रत हुए हैं। संतो के रहस्यवाद की तरह इनका रहस्यवाद एक दम मूर्त का तिरस्कार नहीं कर देता। अतः ऐसे रहस्यवाद का नाम विद्वानों ने सगुण रहस्यवाद ही रखा है।

"सगुण-रहस्यवाद" के पदों में सूरदास जी ने अन्योक्ति पद्धति का प्रयोग किया है, एवं रूपकों के आश्रय से नकारात्मक चित्रों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। सूर एक आदर्शमय लोक की कल्पना करते हुए लिखते हैं—

चकई री ! चलि चरन सरोवर जहाँ न मिलन बियोग।
निसि दिन राम नाम की वर्षा, भय रुज नहिं दुःख सोग।
जहाँ सनक से मीन, हंस शिव, मुनिजन-रन-रवि-प्रभा प्रकाश।
प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि डर गुंजत निगम सुवास॥
जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ता फल सुकृत अमृत रस पीजै।
सो सर छाँडि कुबुद्धि विहंगम ! इहाँ कहाँ रहि कीजै॥

इस पद में आत्मा को चकई और विहंग नाम से पुकारा गया है, तथा इसमें परोक्ष संसार की धुधली सी आभा दिखाई है। अन्य

स्थानों पर सूर ने आत्मा को सखो, भृङ्गी एवं सुवे के रूप में सम्बोधित किया है। एक अन्य पद देखिये :—

भृङ्गी री ! भज चरण कमल पद जहँ नहिं निशि को त्रास।
जहाँ विधि भानु समान प्रभा नख सों वारिज सुख रास॥
जिहिं किंजल्क भक्ति नव लच्चण याम ज्ञान रस एक।
निगम सबक शुक नारद शारद मुनिगन भृङ्ग अनेक॥
शिव विरंचि खंजन मन रंजन छिन छिन करत प्रवेश।
अखिल कोश तहाँ बसत सुकृत जन प्रकटत श्याम दिनेश॥
सुनु मधुकरी भरम तजि निर्भय राजिव रवि की आश।
सूरज प्रेम सिंधु में प्रफुलित तहँ चलि करे निवास॥

उक्त दोनों पदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सूर ने भावुक कवि-हृदय होने के नाते सगुण रहस्यवाद की सृष्टि की है। इसके साथ ही चकई, भृङ्गी आदि विभिन्न वस्तुओं को एक ही वस्तु (आत्मा) का प्रतीक मानने से विनय की अलौकिकता भी स्पष्ट हो गई है।

अतः हम कह सकते हैं कि यद्यपि उन्होंने रहस्यवाद के लिये रहस्यवाद को नहीं अपनाया, फिर भी उनके वियोग हृदय से कुछ वेदनायें इस रूप में प्रकट हुई हैं कि उसमें रहस्यात्मकता का आभास हो गया है। इस रहस्यवाद को हम शुद्ध रहस्यवाद न कह कर "सगुण-रहस्यवाद" ही कहेंगे।

———

सूर-संग्रह

(१)

अब के राखि लेहु भगवान् ।
हम अनाथ बैठे द्रुम डरिया पारधि साधे बान ॥
जाके डर भाग्यो चाहत है ऊपर ढुक्यो सचान ।
दुवो भाँति दुख भयो आनि यह कौन उबारै प्रान ॥
सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी कर छूटे संधान ।
सूरदास सर लग्यो सचानहिं जय जय कृपा निधान ॥

(२)

विनती केहि विधि प्रभुहिं सुनाऊँ ।
महाराज रघुवीर धीर को समयन कबहूँ पाऊँ ॥
याम रहत यामिनि के बीते तेहि औसर उठि धाऊँ ।
सकुच होत सुकुमार नींद ते कैसे प्रभुहि जगाऊँ ॥
दिनकर किरन उदित ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाऊँ ।
अगनित भीर अमर मुनिगन की तेहिते ठौर न पाऊँ ॥
उठत सभा दिन मध्य सिया-पति देखि भीर फिरि आऊँ ।
तुम ही कहा कृष्ण हौं रघुपति केहि विधि-दुख समझाऊँ ॥
एक उपाय करौं कमलापति कहो वो कहि समझाऊँ ।
पतित उधारन सूर नाम प्रभुलिखि कागद पहुँचाऊँ ॥

(३)

रे मन राम सों करि हेत ।
हरि भजन की बारि करिलै उबरै तेरो खेत ॥
मन सुआ तन पींजरा तिहिं माँह राखो चेत ।
काल फिरत बिलार तन धरि अब घरी तुम लेत ॥

सकल विषय विकार तजि तू तरै सायर सेत।
सूर भजि गोपाल गुण को गुरु वताए देत ॥

(४)

चकई री चलि चरण-सरोवर जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निशा होत नहिं कबहूँ यह सायर सुख जोग ॥
जहाँ सनक से मीन, हंस शिव, मुनि जन नख रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं शशि उर गुञ्जत निगम सुवास ॥
जिहि सर सुभग मुक्त मुक्ताफल, सुकृत अमृत रस पीजै।
सो सर छोड़ कुबुद्धि होत विहगंम, इहाँ कहाँ रहि कीजै ॥
लक्ष्मी सहित होत नित क्रीड़ा सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय रस छीलर वा समुद्र की आस ॥

(५)

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल ॥
महा मोह को नपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
भरम भर्यो मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल ॥
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेटा बाध्यैं लोभ तिलक द्यौ भाल ॥
कोटिक कला काँछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल ॥

(६)

ऊधो भली करी अब आये।
विधि कुलाल कीने काँचे घट ते तुम आनि पकाये ॥
रंग दियो हो कान्ह साँवरे अंग अंग चित्र बनाये।
गलन न पाये नयन नीर तें अवधि अटा जो छाये ॥
व्रज करि अँवाँ लोग कर ईंधन सुरति अगिनि सुलगाये।
सोक उसास विरह तन प्रजलित दरसन आस फिराये ॥

भये सँपूरन भरे प्रेम जल छुवन न काहू पाये ।
राज काज ते गये सूर सुनि नन्द नन्दन कर लाये ॥

(७)

देखियत कालिन्दी अति कारी ।
कहियो पथिक जाय हरि सों ज्यों भई विरह जुर जारी ॥
मनो पलिका पै परि धरनि धँसि तरंग तलफ तनु भारी ।
तट वारू उपचार चूर मनो स्वेद प्रवाह पनारी ॥
विगलित कच कुसकास पुलिन मनो पंकज कज्जल सारी ।
भ्रमर मनों मति भ्रमर चहूँ दिसि फिरति है अंग दुखारी ॥
निस दिन चकई व्याज बकत मुख किन मानहुँ अनुहारी ।
सूरदास प्रभु जो जमुना गति तो गति भई हमारी ॥

(८)

नन्द नदन बिन ब्रज में ऊधौ सब विपरीत भई ।
षगपति व्यास वचन सम कोकिल बोलत बोल हई ॥
भूसुत समु गेह में काहू दीपन द्वार दई ।
पंथ सत्रपति सुत सुधारि सर करित सूल सई ॥
सिव-सुत वाहन सत्र भोग सुत रिपुभव बान लई ।
बाजापति वाहन के सैना बोलत जठर मई ।
अब की बेर मिलावहु ब्रजपति जीवन दान जई ।
सूर बरी लै जाहु जहाँ तहाँ कुबजा क्रूर रई ॥

(९)

ऊधौ विरही प्रेम करै ।
ज्यों बिनु पुट पट गहत न रंग को रंग न रसै परै ॥
ज्यों धर देह बीज अंकुर गिरि तो-सत फरनि फरै ।
ज्यों घट अनल दहत तन अपनो पुनि पय अमी भरै ॥
ज्यों रण शूर सहत शर सन्मुख तो रवि रथहि टरै ।
सूर गोपाल प्रेम पथ चलि करि क्यों दुख-सुखन डरै ॥

(१०)

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे क्यों बन जारे टाड़े॥
हमरी गति पति कमल नयन हौं जोग सिख ते राँड़े।
कहो मधुप कैसे समाएँगे एक म्यान दो खाँड़े॥
कहु षटपद, कैसे खैयुत है हाथिन के संग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत माँड़े॥
काहे की झाला है मिलवत कौन चोट तुम डाँड़े।
'सूरदास' तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हाड़े॥

(११)

तबते इन सबहिन सचु पायो।
जबते हरि संदेस तिहारो सुनत ताँवरो आयो॥
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो।
फूले मिरगा चौंकि चखन ते हुते जो बन बिसरायौ॥
ऊँचे बैठि बिहङ्ग सभा बिच कोकिल मंगल गायो।
निकसि कंदरा ते केहरि हू माथे पूँछ हिलायो॥
गहवर तें गजराज निकसि कै अंग अंग गर्व जनायौ।
सूर बहुरिहौ कह राधा, कै करिहौ, बैरिन भायौ॥

(१२)

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नन्दनन्दहिं नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पाँय ठाड़ौ करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ी ह्वै आवति॥
अति आधीन सुजान कनौडे गिरिधर नारि नवावति।
आपुनि पौढ़ि अधर से ज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति॥

(१३)

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि?
किधौं वहि इन्द्र हठि हरि वरज्यौ दादुर खाए शेषनि॥

किधौं वहि देस बकन मग छाँड़यो, घट बूड़तिन प्रवेसनि।
किधौं वहि देस मोर चातक पिक् बधिकन बधे विशेषनि।।
किधौं वहि देस बाल नाहिं झूलति गावत गीत सहेसनि।
पथिक न चलत सूर के प्रभु पै जासों कहीं संदेसनि।।

(१४)

अपुनयौ अपुन ही बिसरयो।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भूसि मर्यो।।
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखि के आपुन कूप पर्यो।
जैसे गज लखि फटिका सिला में दसननि जाइ अर्यो।।
मर्कट मूठ छाँड़ि नहिं दीनी घर घर द्वार फिर्यो।
सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौने जकर्यो।।

(१५)

*अद्भुत एक अनूपम बाग[1]।
युगल कमल[2] पर गज[3] क्रीडत है, तापरसिंह[4] करत अनुराग।।
[5]हरि पर सरवर[6] सर पर गिरिवर,[7] गिरि पर फूले कंज [8]पराग।
रुचिर कपोत[9] बसै ता ऊपर, ता ऊपर अमृतफल[10] लाग।।
फलपर पुहुप[11] पुहुप पर पल्लव[12] तापर शुक[13] पिक[14] मृग मद[15] कारा[16]
खंजन[17] धनुष[18] चन्द्रमा[19] ऊपर, ता ऊपर इक मणिधर नाग[20]।।
अंग अंग प्रति और और छवि, उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पिवहु सुधा रस, मानहु अधरन को बड़ भाग।।

---

*इस पद में शरीर को बाग का रूपक दिया है।

१—वाटिका, २—दोनों पैर, ३—गज-गति ४—कमर ५—सिंह रूपी कटि, ६—पेट, ७—छाता, ८—उरोज ९—कंठ, १०—सिर, ११—फूल रूपी मुख १२—ओष्ठ १३—नाक १४—जिह्वा (पिक बैनी) १५—कस्तूरी विन्दी १६—काली पाटी १७—नेत्र १८—भौंहें १९—ललाट २०—चोटी

विशेष—नखशिख वर्णन का कैसा सुन्दर अलंकार पूर्ण वर्णन है।

(१६)

देखि सखि पाँच कमल, द्वै संभु।
एक कमल ब्रज ऊपर राजत, निरखत नैन अचंभु ॥
एक कमल प्यारी कर लीन्हे, कमल सुकोमल अंग।
जुगल कमल[1] सुत-कमल[2] विचारत, प्रीतिन कबहुँ भंग ॥
षट जु कमल[3] मुख-सनमुख चितवत, बहुविधि रंग तरंग।
तिन मैं तीनि सोम[4] वंसी वस तीन सु कस्यप[5] अंग ॥
जेइ कमल[6] सनकादिक दुरलभ, जिनही निकसी गंग।
तेई कमल सूर तिन चितवत निकट निरन्तर संग ॥

(१७)

सोचति राधा लिखति नखन[1] में,
बचन न कहत, कंठ जल तास[2]।
छिति[3] पर कमल[4] कमल पर कदली[5],
पंकज[6] कियो प्रकास ॥
ता पर[7] अलि सारंग[8] पर सारंग[9],
प्रति सारंग[10] रिपु[11] लैं कियो बास।

उपर्युक्त पद में सूरदास जी ने राधिकाजी की छाती पर श्रीकृष्ण जी का मुख रखते हुए वर्णन किया है। राधिकाजी के दोनों उरोजों को शिव माना है। पाँच कमल से तात्पर्य श्री कृष्ण जी का मुख १ + २ नेत्र + २ हाथ हैं।

१—जुगल कमल-राधा कृष्ण, २—सुत-कमल-ब्रह्मा, ३—षटकमल-२ नेत्र राधा + २ नेत्र कृष्ण + २ नेत्र राधिका जी के प्रतिबिम्बित, ४—सोम बंशी-चन्द्रमा, ५—नासिका ६—चरण-कमल

१—नाखून से पृथ्वी खोदती हैं (चिन्ता में), २—गला रुँध गया है, ३—पृथ्वी, ४—कमल रूपी पैर, ५—जंघा ६—उरोज, ७—उरोज की ऊपर की श्यामता की उपमा भ्रमर से दी गयी है, ८—कपोत (कंठ), ९—कमल (मुख), १०—रात्रि, ११ - दुपहरिया के फूल।

तहँ अरि-पंथ[12]-पिता[13] युग[14] उदित,
वारिज[15] विविरंग भयो अभास ॥
सारंग[16] मुख ते पटत अंबु ढरि,
मनु शिव[16] पूजति तपति विनास ।
सूरदास प्रभु हरि[19] विरहा रिपु,
दाहत अंग दिखावत वास ॥

(१८)

विधु[1] वदनी अरु कमल[2] निहारै ।
सुमनासुत[3] लै कमल[4] सुमजित,
धनपति[5] धाम[6] को नाम[7] सँवारै ।
तरणि[8] तात[9] वनिता[10] सुत[11],
ताछवि[12] कमलनि[13] रचि-रचि ग्रन्थि सँवारै[14] ॥
कमल[15] कमल[16] पर रेख बुतावति[17],
सारंग[18] रिपु[19] पाहन[20] गनि ठारै[21] ।
उर हारावलि मेलति कमलनि[22],
मनहुँ इन्दु[23] पारस[24] ढिंग पारै[25] ।
सूरस्याम के नामहि जीतन,
कमला के पदहि विचारै ॥

१२— पंथ अरि-मार्ग में वाधा डालने वाली नदी यमुना, १३—सूर्य, १४—दोनों ताटंको को उपमा दो सूर्यो से दी गयी हैं, १५—कमल की शोभा को फीका करने वाले कपोल, १६—खंजरीट, १७—शिव (उरोज), १८—कामदेव की ताप दूर होजाए, १६—कृष्ण वियोग

१—विधु वदनी-चन्द्र मुखी. २—कमल-दर्पण, ३—सुमन सुत-चमेली का तेल, ४—कमल-मुख, ५—धनपति-कुवेर ६—धाम-अलका, ७—नाम-अलक (केश) ८—तरणि-सूर्य, ६—कश्यप, १०—कद्रू, ११—सर्प, १२—केश, १३—हाथ, १४—गाँठ देती है, १५- कमल नेत्र में, १६—कमल-हाथ, १७—काजल देती है । १८—दीपक, १६—वस्त्र, २०—गाठ कर ओढती है २२—कर १३—चन्द्र रूपी हार २४—उरोज २५—पहनती है ।

(१६)

राधे[1] उडु-गन-पति[2]-सुत[3]-हीन[4]।
तेरो भवन गवन हरि कीन्हो,
राहु-वदन[5] कस कीन ॥
सारंग[6] कहै सुनो हौ सारंग,
सारंग[8]-सुत कस दीन ।
सारंग[9] देखि मगन भयो सारंग,[10]
शैल[11] सुतौ-सुतै[12] कीन ॥
कदली खंभ बने अति भुज वल,
नागारिपु[13] कटि छीन ।
सूरश्याम हँसि मिली गोपालहिं,
अंग अंग पग बीन ॥

(२०)

रवि[1] दो[2] धर[3] रिपु[4] प्रथम विकासो[5]।
ताने निज पत्नी[6] मेरे मन, करि सारंग प्रकासो[7]॥
पत्नी[8] लै सारंग[9]-धर सजनी सारंग[10] धर मन खैंचो[11]।
ग्रह नक्षत्र अरु वेद सवन[12] मिलि तन प्रण करके बैंचो[13]॥
सो तनु हानि होन चाहत है, बिना प्राणपति पाये।
कर शंका कारण की माला तिहि पहिराउ सुभाये[14]॥

---

१ नक्षत्र, २—चन्द्रमा. ३—बुद्ध (बुद्धि), ४—मूर्ख ५—घूँघट, ६—स्त्री, ७—राधा जी, ८—अनखन, काजल ६—रात्रि, १०—राधाजी ११—पार्वती जी, १२—गणेश (प्रारम्भ किया) १३—सिंह

१—सूर्य, २—दूसरा ग्रह अर्थात् चन्द्रमा ३—धारण करने वाले महादेव, ४—कामदेव, ५—पहले पहल उत्पन्न हुआ। ६—रति अर्थात् प्रेम, ७—हृदय कमल में प्रकाशित किया अर्थात् कामदेव ने प्रेम उत्पन्न किया, ८—प्रेम ६—कृष्ण, १०—हाथ धर दे, ११—हृदय में खींचा, १२—ग्रह ६+नक्षत्र २७+वेद ४—योग=४० अर्थात् मन (ने), १३—प्रण करके मैंने शरीर को वेच दिया, १४—प्राण चल जाने की की शंका होने के कारण इसमें 'कारणमाला अलंकार' है।

(२१)

ऊधो तव ते अब असि नीको ।*

लागत हमें स्याम सुन्दर बिन, तनिक नहीं ब्रज फीको ॥

वायस[1] शब्द अजा[2] की मिल बनि, कीन्हों काज अनूप ।

सब दिन राखत नीकन[3] आगे, सुन्दर स्याम स्वरूप ॥

दोइ जनम को राजा[5] बैरी, का[6] विधि आप बनावै ।

करत 'अनुज्ञा भूषन' सोको, सूर स्याम चित आवै ॥

(२२)

कहै कोउ परदेसी की बात ।

मन्दिर[1]-अरध[2] अवधि हरि बदि गये,
हरि[3]-अहार[4] चलि जात ॥

ससिरिपु[5] बरष, भानुरिपु जुग सम,
हर-रिपु[7] किये फिरै घात ।

मघ पंचम लै गये स्याम घन,
तातें जिय अकुलात ॥

नखत,[9] वेद[10], ग्रह[11] जोरि अरध[12] करि,
को बर जै हमें खात ।

'सूरदास' प्रभु तुमहिं मिलन को,
कर मींजत पछितात ॥

उपर्युक्त पद में अनुज्ञा अलंकार है । १—वायस शब्द-कौवा का शब्द (का) २—अजा-बकरी का शब्द 'में' । ३—मिलबनि-मिलाकर, अर्थात् का में या काम ने, ४—नीकन-का पर्याय अच्छन—आखें, ५—दोइ जनम को राजा अर्थात् द्विजराज. ६—का-चन्द्रिका, ७ सूर-अन्धा ८—स्याम चित आवै· श्रीकृष्ण की मूर्ति याद आती है ।

सारांश यह है कि ऐसा अन्धा होना भी अच्छा है कि हरि स्मरण होजाए।

१—मकान, २—आधा-(पक्ष), ३—सिंह, ४-माँस (महीना), ५—दिन, ६—रात्रि, ७—कामदेव, ८—मघा से पाँचवां नक्षत्र चीत (चिन्ता) अर्थात् मन, ९—नखत = २७ + वेद ४ + ग्रह ९ योग = ४० का आधा बीस अर्थात् विष (जहर)

(२३)

सारंग[1] सारंग[2] धरहि मिला वहु।
सारंग[3] विनय करत सारंग[4] सों[5] सारंग[6] दुख विसरावहु।।
सारंग[7] समय दहत अति सारंग[8] सारंग[9] तिनहिं दिखावहु।
सारंग[10]-पति सारंग[11] घर जैहै सारंग[12] जाइ मना वहु।।
सारंग[13] चरन सुभग कर सारंग[14], सारंग[15] नाम बोलावहु।
सूरदास सारंग[16] उपकारिनि सारंग[17] मरत जियावहु।।

(२४)

राधा दधि[1] सुत क्यों न दुरावति।
हौं जु कहति वृषभानु नन्दिनी काहे को तू जीव सतावति।
जलसुत[2] दुखी, दुखी है वनचर,[3] द्वै[4] पंछी दुख पावत।
सारंग[5] दुखी होत सारंग विनु तोंहिं दया नहिं आवत।।
सारंग[7] रिपु को नेक ओट गहि, ज्यों सारंग[8] सुख पावत।
सूरदास सारंग[9] केहि कारण, सारंग[10] कुलहि लजावत।।

१—सखी २—पर्वत ३—अनन्त, ४—विष्णु ५—सपथ, ६—सूर्य (तपन अर्थात् कामदेव का ताप), ७—रात्रि ८—हृदय, ९—कृष्ण चन्द्र, १०—दीपक दी-दीप्ति, ११—अपने घर, १२—कृष्ण चन्द्र, १३—कमल १४—कृष्ण जी के पास, १५—सखी, १६—कुरंग नेत्री, १७—सहेली

१—चन्द्रमा। २—कमल। ३—हंस (राधिका जी की वाणी हंस से अधिक मधुर एवं मीठी है अतः हंस दुखी है।) ४—चकवा, चकई (रात को वियोग के कारण दुखी होते हैं)। ५—भौंरा ६—सुगंध (रात्रि को कमल बंद हो जाने के कारण भौंरा सुगंधि से वञ्चित रह जाता है) ७—अंचल (चन्द्र मुखी रूपी मुख का शत्रु इसलिए कहा कि अंचल से मुख ढक लिया हो)। ८—चन्द्रमा-(मुख के अंचल द्वारा ढक जाने के कारण चन्द्रमा प्रसन्न है, क्योंकि उसके समान अब संसार में कोई अन्य शोभा पूर्ण नहीं है) ९—राधा। १०—वृषभानु कुल।

(२५)

जनि हठि करहु सारंग नैनी[1]।
सारंग[2] सीस[3] सारंग,[5] ता पर[6] सारंग सारंग बैनी[7] ॥
सारंग[8] रसन,[9] दसन गुनि सारंग,[10] सारंग[11] सुत दृग निरखि निपैनी।
सारंग[12] कहो सु क्यों न विचारो, सारंग[13]-पति सारंग[14] रचि सैनी[15]॥
सारंग[16] सदनहिं लैजु वहन गये, अजहूँ न मानत मत भई रैनी।
सूरदास प्रभु तव सग जोवैं; अन्धक[17]-रिपु ता[18] रिपु सुख दैनी॥

(२६)

देखे चार[1] कमल इक साथ।
कमलहिं[2] कमल[3] गहे लावत[4] है,
कमलहि[5] मध्य समात ॥
सारंग[6] पर सारंग[7] खेलत[8] है,
सारंग[9] ही सों हँस हँसि जात।

पद २५-१—सारंग नैनी-मृग के नेत्रों वाली। १—कमल (यहाँ चरण के अर्थ में समझा जाएगा क्योंकि चरण की उपमा कमल से दी जाती है। ३—चन्द्र(यहाँ चन्द्र का अर्थ नाखून ग्रहण किया जाएगा क्योंकि नाखून चन्द्र की भाँति उज्वल एवं सुन्दर होते हैं)। ४—सिंह (यहाँ पर सिंह का अर्थ सिंह गति वाली लिया जाएगा। ५—सिंह के समान कटि वाली। ६—तालाब। ७—सारंग बैनी का अर्थ कोयल के समान मधुर बोलने वाली। ८—जल, अमृत ९—रसन-जिह्वा। १६—बिजली)। ११—मृग शावक १२—अलि—(यहाँ पर सखी का अर्थ ग्रहण किया जाएगा)। १३—कृष्ण, १४—कमल की १५—सेज बना कर बैठे हैं। १६—चन्द्रमा। १७—शिवा जी १८—कामदेव।

सखी का बचन सखी से—

पद २६-१—चार कमल-राधा के उरोज २ + कृष्ण जी के हाथ २। २—कृष्ण के कर। ३—राधा के कर ४—रोकते है। ५—राधा और कृष्ण दोनों के हाथ एक दूसरे में समाये जान पड़ते हैं। ६—कृष्ण का मुख। ७—राधा का मुख। ८—देखता है ९—मुख।

सारंग[10]-स्याम और हू सारंग[11],
सारंग[12] सों करै बात[13] ॥
अरि सारंग[14] राखु सारंग[15] को [17],
सारंग[16] गहिं सारंग[17] को जात[18] ।
तोलौं रखु[19] सारंग सारंग[20] को,
सारंग[21] लै आऊँ हाथ ॥
सोह सारंग[22] चतुरन व दुर्लभ,
सोइ सारंग शम्भु मुनि ध्यात ।
सेवत सूरदास सारंग को,
सारंग ऊपर बलि बलि जात ॥

(२७)

सारंग[1] रिपु की ओट रहे दुरि,
सुन्दर सारंग[2] चारि ।
शशि मृग फणिग धुनिग दोउ अंग अंग,
सारंग की अनु[3] हारि ॥
तासें एक अबर सुत सारंग[4],
बोलक बहुरि बिचारि ।
परकृत[5] एक नाम है दोऊ,
किधौं पुरुष किधौं नारि ॥

१०—श्याम कमल । ११—लाल कमल । अर्थात् श्याम कमल से तात्पर्य राधिका जी के कजल पूर्ण नेत्र तथा लाल कमल से कृष्ण जी के प्रेम पूर्ण लाल नेत्र । १२—कृष्ण । १३—संकेत करते हैं । १४—पट १५—नायक नायिका । १६—रात्रि । १७—चन्द्रमा । १८—ले जा रही है । १९—सूखी । २०—दीपक । २१—तेल । २२—राधा कृष्ण

पद २७-१—सारंग रिपु-दीपक (घूँघट) २—चारि सारंग-हिरन, सर्प, चन्द्रमा, मयूर । ३—समता करते हैं । ४—कोयल का पुत्र ५—सर्प (वैणी).

ढाँकति[६] कहा प्रेम हित सुन्दरि,
सारंग[७] नेक उघारि ।
सूरदास प्रभु मोहे रूपहि,
सारंग[८] वदन निहारि ॥

(२८)

*बोल न बोलो ए ब्रजचन्द ।
कौन है सन्तोष सब मिलि,
जान आप अनन्द ॥
कहें 'सारंग[१] सुत[२] बदनि[३]';
सुन रही नीचे हेर ।
निरख सारंग[४] वदन[५] सारंग[६],
सुमुख सुन्दर फेर ॥
गहत सारंग[७] रिपु[८] सुसारंग[९],
दियो सारंग[१०] सीस ।
कियो भूषण[११], पुत्र सारंग[१२],
संग सारंग[१३] दीस ॥
उदय सारंग[१४] जान सारंग[१५],
गयो अपने गेह ।
सूर स्याम सुजान संग ह्वै,
चली बिगत-कलेश ॥

६—छिपाती है । ७—ऊपर कहे गये चारों सारंग । ८—कृष्ण जी

*इस पद में महाकवि सूरदास जी कूटोक्ति द्वारा नायिका की वचन-विदग्धता का परिचय दिया है । नायिका नायक से कहती है—

१—सागर । २—चन्द्रमा । ३—चन्द्र मुखी अर्थात् चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली राधिका । ४—राधिका जी के कमल रूपी पैर । ५—मुख । ६—कृष्ण । ७—दीप । ८—वस्त्र । ९—कमल रूपी हाथ । १०—शिव रूपी उरोज । ११—अलंकार । १२—काजल । १३—दीपक । १४—सूर्य । १५—चन्द्रमा । १६—अपने घर चला गया ।

(२६)

जल सुत[१] प्रीतम[२] सुत[३] रिपु[४] बन्धव[५]-
आयुध[६] आपुन बिलख भयोरी ।
मेरु सुतापति[७] बसत जु माथे[८],
कोटि प्रकाश रिसाइ गयोरी[९] ॥
मारुत[१०] सुत पति[११] अरि[१२] पुर[१३] कासी[१४]
पितु[१५] वाहन[१६] भोजन[१७] न सोहाई ।
हर[१८] सुत[१९]-वाहन[२०]-अशन[२१]-सनेही[२२],
मानहुँ अनल देह दौलाई[२३] ॥
उदधि-सुता-पति[२४] ता कर—
वाहन[२५] सो कैसे समझावै ।
सूर स्याम मिलि धर्म सुवन[२६] रिपु[२७],
ता अवतारहिं[२८] सलिल[२९] बहावै[३०] ॥

१—कमल । २—सूर्य । ३—कर्ण । ४—अर्जुन । ५—भीम । ६-शस्त्र (गदा) । ७—शिवजी ८—चन्द्र । ९—चला गया । १०—हनुमान । ११—रामचन्द्र । १२—रावण । १३—लंका । १४—अगस्त्य । १५—कुंभ । १६—जल । १७—भोजन । १८—शिवजी । १९—कार्तिकेय जी । २०—मोर । २१—सर्प । २२—हवा । २३—आग सी प्रतीत्त होती है । २४—लक्ष्मी के पति अर्थात् विष्णु जी । २५—गरुण । २६—युधिष्ठिर । २७—दुर्योधन । २८—दुःशीलता । २९—आँसू । ३०—बहाते हैं ।
